



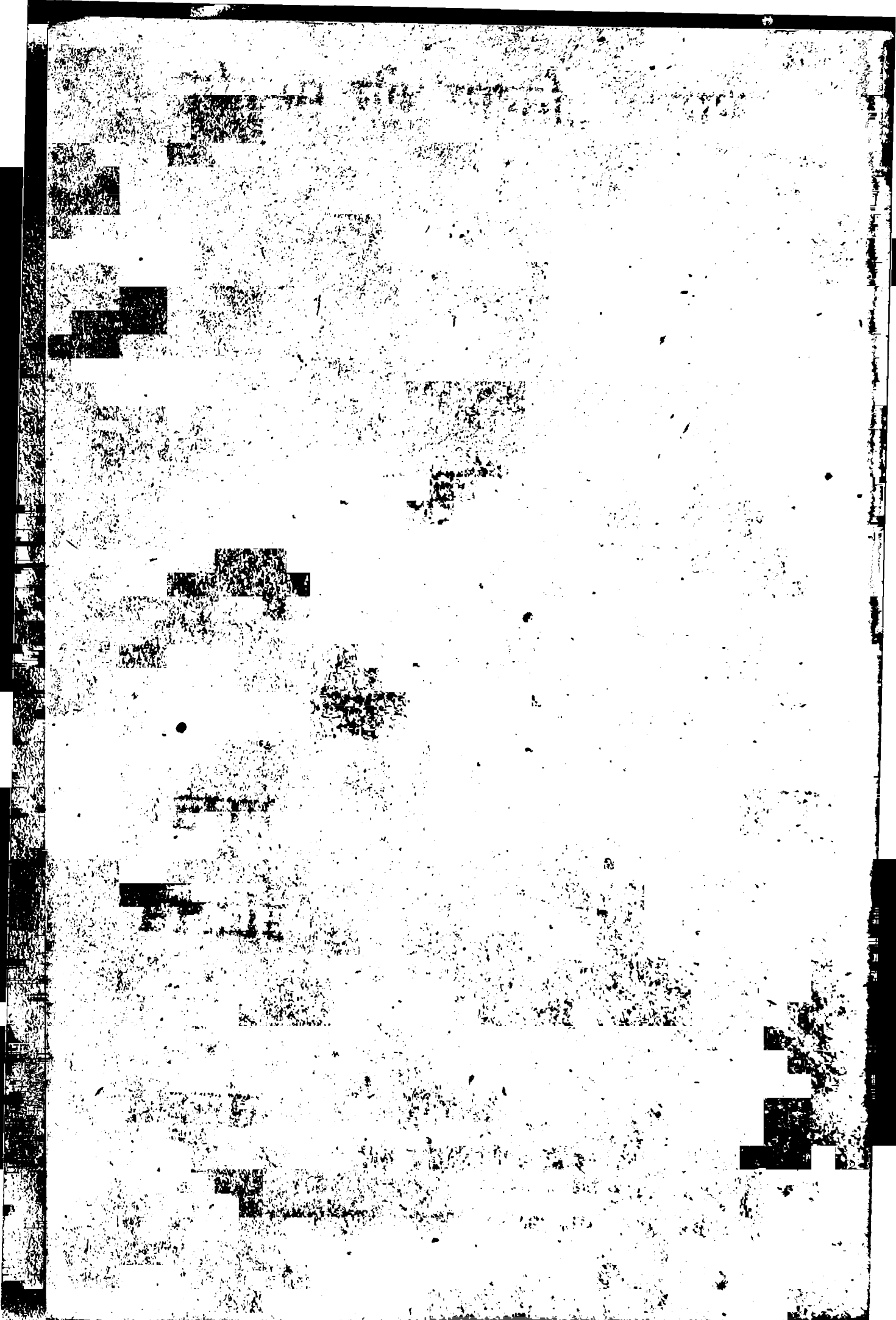
# भारत: इतिहास और संस्कृति



गजानन मुक्ति



**भारतः  
इतिहास  
और  
संस्कृति**





# भारत : इतिहास और संस्कृति

लेखक

गजानन मुक्तिबोध

प्रकाशक

कलानिकेतन मंदिर

जनकगंज, लश्कर, ग्वालियर

सर्वाधिकार सुरक्षित  
प्रथमावृत्ति १९६२

मूल्य एक रुपया पच्चास नये पैसे

मुद्रक : हरीओम प्रेस, ३ ममफोर्डगंज, इलाहाबाद

यह पुस्तक  $20 \times 30 = 24$  पौड  
ट्वाइटप्रिंट कागज पर मुद्रित है

## \* यह पुस्तक

यह इतिहास की पुस्तक नहीं है—इस अर्थ में कि सामान्यतः इतिहास में राजाओं, युद्धों और राजनैतिक उलट-फेरों का जैसा विवरण रहता है' वैसा इसमें नहीं है। इस पुस्तिका का वह प्रयोजन भी नहीं है क्योंकि वह राजनैतिक इतिहास का विषय है। समाज की गतिशीलता में राजनैतिक प्रक्रिया अनेक प्रक्रियाओं में से एक है। समाज को विकासशील बनाने वाली अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, सांस्कृतिक प्रक्रिया। जीवन जैसा है उससे उसे अधिक अच्छा सुन्दर उदात्त और मंगलमय बनाने की इच्छा आरम्भ से ही मनुष्य की रही है। यही इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रूप लेती है, तब वह संस्कृति कहलाती है जिसके अंतर्गत धर्म, नीति, कला, साहित्य, संगीत आदि आते हैं। संस्कृति समाज की मूल जीवनदायनी शक्ति है, राजनैतिक शक्ति से भी अधिक। भारतीय समाज इसका प्रमाण है। राजनैतिक दासता सदियों रही पर संस्कृति की शक्ति के कारण, यह जाति जीवित रही और विकास करती रही।

इसके साथ ही लगी आती है, सामाजिक विकास की शक्ति। राजनैतिक उलट-फेर होते रहते हैं, पर समाज में विकास की परम्परा चलती रहती है। ऊपर-ऊपर मुसलमान और हिन्दू राजाओं में युद्ध चलते रहते थे, पर समाज में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के साथ भ्रातृ-भाव से रहने के प्रयत्न कर रहे थे। वे एक दूसरे से विचारों, आदर्शों, प्रथाओं और धार्मिक मान्यताओं का आदान प्रदान भी कर रहे थे। वे एक दूसरे के जीवन को प्रभावित कर रहे थे। तभी मध्ययुग में उधर हिन्दू और मुसलमान राजाओं की टक्कर होती थी, लेकिन मुसलमान यदि ब्रजभाषा में कृष्ण-काव्य लिख रहे थे और हिन्दू मुसलमान पीरों

और फकीरों की पूजा कर रहे थे। समाज अपने में किसी बाधा को स्वीकार नहीं करता, चाहे वह राजनैतिक हो या धार्मिक।

इस भारतीय समाज की विकास यात्रा बहुत दिलचस्प है। इसमें कितने उलट फेर हुए हैं ! कितनी जातियाँ यहाँ आईं और इसमें बस गईं, किस प्रकार उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित किया और फिर एक होकर आगे बढ़ीं—यह बड़ी रोचक और स्फूर्तिदायिनी कथा है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि भारत 'महामानव सागर' है, जिसमें कितनी ही नदियों की पावन धाराओं का जप किया है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, उसमें सदियों से समन्वय की प्रक्रिया चल रही है; विभिन्न जातियों की संस्कृति के तत्व उसमें मिलते गये हैं और वह बहुत विराट हो गई। यह हमारी बड़ी शक्ति है। इकबाल ने कहा था—'कुछ बात है, कि हस्ती मिटती नहीं हमारी', 'कुछ बात' यही सांस्कृतिक समन्वय की शक्ति है।

मेरी दृष्टि में हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की जानकारी किशोरों के लिए बहुत आवश्यक है। इससे वे इस देश की परम्परा को सही ढंग से समझ सकेंगे। उनकी भावनाओं का विस्तार होगा और वे उदारता का दृष्टिकोण अपना सकेंगे। अपने इस अति प्राचीन समाज के मर्म को समझना बहुत जरूरी है।

मैंने इस पुस्तक में यही प्रयत्न किया है। युद्धों और राजवंशों के विवरण में न अटककर मैंने अपने समाज और उसकी संस्कृति के विकास-पथ को अंकित किया है। स्वाभाविक है इनमें राजनैतिक हलचलें भी आ गई हैं। पर उन्हें प्रधानता नहीं दी गई। मैंने उन धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक तथा राज-

नैतिक आंदोलनों को और उन व्यक्तियों को ही प्रधानता दी है जिन्होंने समाज को आगे बढ़ाया और उसका रूप बदला ।

वैदिक काल और बौद्ध-युग तथा मुगल सल्तनत के बाद के हमारे आधुनिक युग पर मैंने विस्तार से लिखा है क्योंकि बहुत दूर और बहुत पास की वस्तुएँ प्रायः धुँधली दिखती हैं । मेरा उद्देश्य है कि पाठक अति प्राचीन और अति नवीन परम्पराओं को ग्रहण कर सकें ।

मैंने विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों की सहायता ली है । जहाँ जो उपयोगी मिल सका, मैंने ले लिया है । इन सब विद्वानों के प्रति मैं आभारी हूँ ।

आशा है यह छोटी सी पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी ।

—लेखक



## अनुक्रम

	पृष्ठ
१. सभ्यता का उषःकाल	१
२. आर्य-सभ्यता का आरम्भ	१२
३. उत्तर वैदिक काल	२२
४. जैन तथा बौद्ध-धर्म	३६
५. अशोक की धर्म-विजय	४७
६. भारत के स्वर्ण-युग के रश्मियाँ	५७
७. प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय	६३
८. भारत में मुगलों का आधिपत्य	६६
९. राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना	७३
१०. मध्य युगीन सांस्कृतिक अभ्युत्थान	८६
११. सात समुन्दर पार के जहाज	१०८
१२. कम्पनी राज, सन् सत्तावन का स्वतंत्रता-युद्ध	११४
१३. भारत में आधुनिक युग का उषःकाल	१२१
१४. राष्ट्रीय चेतना का विकास : प्रथम चरण	१२५
१५. राष्ट्रीय चेतना का विकास : द्वितीय चरण	१३२
१६. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	१४३
१७. महानों का मन्वन्तर	१४६
१८. भारत की स्वाधीनता का सूर्य	१५६





## सभ्यता का उषःकाल । १

### सिन्धु-सभ्यता

[ सतत् प्रयत्नों के द्वारा नवपाषाण-काल के मानव ने धातुवस्त्रों का प्रयोग करके, क्रमशः सभ्यता का विकास किया। वह अब प्रकृति-विजयी हो उठा। ग्रामों ने धीरे-धीरे नगरों का रूप धारण किया। कला-कौशल तथा खेती-बारी के प्रसार के साथ ही व्यापार का प्रसार हुआ। गणित तथा ज्योतिष जैसे शास्त्रों का विकास होने लगा। मनुष्य ने सभ्यता के युग में प्रवेश किया।

किन्तु, जब तक समूचा विश्व सभ्य नहीं हो जाता, तब तक सभ्यता-केन्द्रों को खतरा ही रहता था।

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में उन दिनों विभिन्न जातियाँ उपजाऊ भूमि-भागों की खोज में भटक रही थीं। इन परिभ्रमण-शील जातियों ने पुरानी सभ्यताओं को नष्ट कर दिया। तत्कालीन युग की यह विशेषता भारत में भी दृष्टिगोचर हुई। विकास, प्रसार, संघर्ष, सम्पर्क और समन्वय का एक महान् उदाहरण भारत में भी उपस्थित हुआ ]

किसे मालूम था कि भूरी, सूखी, बंजर और उजाड़, धूप में झिलमिलाती पहाड़ी के पेट में एक बहुत बड़ा रहस्य दबा पड़ा होगा। हाँ यह सही है कि आसपास की वस्तियों वाले लोग उस पहाड़ी के बारे में अजीब किस्से सुनाया करते थे।

लेकिन ऐसे कहानी-किस्से कहाँ नहीं सुनाये जाते। खास तौर से पुरानी जगहों में, जहाँ ऐतिहासिक भग्नावशेष होते हैं, हमें ऐसे किस्से अक्सर सुनने को मिलते हैं। लेकिन, यहाँ तो भग्नावशेष कहीं दिखाई ही नहीं देते थे।

जो हो, एक रोज का किस्सा है एक वीरान, और धूप में चिलमिलाती हुई पहाड़ी पर चढ़ कर कुछ मजदूर कुदालियाँ चलाने लगे। खड़ी धूप में आखिर पहाड़ी को छेड़ा क्यों जा रहा है? बड़ा आश्चर्य हुआ देखने वालों को।

और, फिर एक दिन दुनिया ने सुना कि वहाँ एक नगर का नगर निकल पड़ा है, कि वह अति प्राचीन नगर है; और यह भी सुना कि भारत में आर्यों के आने के पहले वहाँ एक बहुत बड़ी सभ्यता थी।

अब कुदालियाँ रुखी-भूरी जमीन पर लट्टू होकर; दूर-दूर के अलग-अलग स्थानों में खुदाई करने लगीं। नये नगर, या उनके ध्वंसावशेष हजारों सालों से जो जमीन में दबे गड़े थे, अब धूप और खुली हवा पाकर अपना इतिहास बताने लगे।

पूरा किस्सा यों है।

आजकल के पाकिस्तान के अन्तर्गत सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में सिन्धु नदी के किनारे मोहनजोदड़ो नामक एक स्थान पर, अत्यन्त प्राचीन काल में, एक भव्य नगर था। इस नगर से लगभग चार सौ मील दूर उत्तर की ओर पंजाब के मोटगोमरी जिले में, रावी नदी के किनारे, हेरप्पा नामक स्थान पर एक समृद्धिशाली नगर था। आज से लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व, ये दोनों नगर और इनके आस-पास का पूरा क्षेत्र, एक विशाल सभ्यता के प्रकाश में जगमगाता था। वह भारत की सर्वप्रथम सभ्यता थी। उस सभ्यता के उषःकाल का गुलाबी-सुनहला प्रकाश सिन्ध, गुजरात, खंभात, राजस्थान से लेकर पूर्व में गंगा-जमुना के दोआब तक, कम से कम मथुरा तक, और वहाँ से लेकर उत्तर पश्चिम में पंजाब होते हुए बलूचिस्तान-अफगानिस्तान तक फैला हुआ था।

उन दिनों इस पूरे क्षेत्र की जलवायु अधिक अनुकूल थी। आजकल यह, अल्प वर्षा, शुष्क भूमि, महसूल और सूखे टीलों का प्रदेश है। किन्तु, उन

दिनों यह सघन वनों से आच्छादित था। वर्षा खूब होती थी। सिन्धु नदी, अपनी सहायक नदियों को समेट कर, लम्बे चौड़े उपजाऊ मैदानों में बहती हुई समुद्र में मिलती थी।

आज लुप्त और गुप्त हो गई सरस्वती और दृणद्वती नदियाँ उन दिनों प्रसन्न सलिला थीं। सरस्वती नदी राजस्थान में से बहती हुई, सिन्धु नदी में मिलती थी। ( नये पुरातन विद्वानों ने राजस्थान में खुदाई करके बालू में दबे हुए सरस्वती नदी के पुराने मार्ग को खोज कर निकाला है। ) अफगानिस्तान और बलूचिस्तान की नदियाँ भी हिम तथा वर्षा के जल से परिपूर्ण होकर, वनों और सघन कछारों में से बहती थीं।

मनुष्य की आदिम सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुईं। मिस्र में नील नदी के किनारे, इराक में यूफ्रेटीज-टायग्रिस नदियों के तट पर, चीन में यांगटीजी नदी की घाटी में, सिन्धु नदी की उपत्यकाओं में प्राचीन सभ्यताओं का आविर्भाव हुआ। ये सभ्यताएँ मुख्यतः खेती बारी पर आधारित थीं। इसलिए उनके ग्राम और नगर, साधारणतया, नदियों के किनारे बसाये गये। सिंचाई के साधन, तथा आवागमन के साधन इन दो को देखकर ही बस्तियाँ कायम की जातीं।

सिन्धु-सभ्यता की खोज सन् १९२१ ई० में हुई। उसको ढूँढ़ निकालने का श्रेय दो भारतीय पुरातत्वविदों—श्री राखालदास बैनर्जी और रायबहादुर दयाराम साहनी को है। उन्होंने मोहनजोदड़ो और हरप्पा का उत्खनन करके भारतीय इतिहास को पाँच छः हजार साल पीछे ढकेल दिया। भारत के स्वाधीन होने पर और जगह भी खुदाई हुई। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस सभ्यता का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत था।

इस अति प्राचीन सभ्यता का स्वरूप बहुत ही विस्मयकारी है। वह कई बातों में इराक ( सुमेरिया बेबिलोनिया ) की सभ्यताओं से बढ़ कर थी।

पश्चिम और पश्चिमोत्तर प्रदेश में विकसित यह सभ्यता भारत की प्रथम सभ्यता है, जो अर्यैतरों की देन है। ईसा के ढाई हजार वर्ष पहले—ऋग्वै-

दिक आर्यों के प्रथम आगमन के समय—वह नष्ट भी हो गई। इस सभ्यता के उत्थान, पतन और नाश का काल लगभग डेढ़ हजार साल रहा होगा। अर्थात् इसका जीवन काल ईसा के लगभग ४ हजार वर्ष पूर्व से आरम्भ होकर ढाई हजार साल ई० पू० में उसका नाश हो गया।

सिन्धु सभ्यता, मुख्यतः, नगर सभ्यता है, ग्राम सभ्यता नहीं। इस सभ्यता के अन्तर्गत नगर—हरप्पा, मोहनजोदड़ो तथा अन्य नगर हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त और भी जगह खुदाई हुई, जिससे हमें इसके विस्तार और प्रसार के सम्बन्ध में और भी बातें मालूम हुईं।



मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार, जिसमें ४००० वर्ष पश्चात्  
अब भी पानी आता है,

नगर-योजना—सिन्धु सभ्यता नगर सभ्यता है। इन नगरों की रचना  
एक विशेष योजना के अनुसार की गई मालूम होती है—

मोहनजोदड़ो की सड़कें पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर चौकोर चौराहे बनाती हुई सीधी चली गई हैं। सड़कें कम से कम तैंतीस फीट चौड़ी होने से, गाड़ियाँ और रथ बड़े मजे में आ जा सकते थे। गलियाँ कम से कम नौ फीट चौड़ी हैं। सुनियोजित निर्माण का यह स्पष्ट प्रमाण है।

यही नहीं, गलियों और सड़कों के दोनों ओर इमारतें मिलती हैं। मोहन जोदड़ो में ये भवन तीन प्रकार के हैं। एक रहने के घर, दूसरे सार्वजनिक भवन, तीसरे स्नानागार। विशाल स्नानागारों से यह सूचित होता है कि जनता के जीवन में स्नान का सांस्कारिक महत्त्व था। पक्की ईंटों की बनी हुई साफ-सुथरी नालियों के रास्ते से, गन्दा पानी बड़ी नालियों तक पहुँचाया जाता था। कूड़ा आदि फेंकने के लिए कूड़े के हौजों तथा अन्य साधनों का विशेष रूप से प्रबन्ध था।

मकान आग में पकाई हुई ईंटों, मिट्टी और चूने के प्रयोग से बनते थे। उनके जीने ऊँचे और सँकरे होते थे। उनकी खिड़कियाँ ऊँची और सँकरी होती थीं। शायद, उन दिनों जगह की तंगी महसूस की जाती थी। हर घर में खुला हुआ आँगन था और उसके एक कोने में रसोई का प्रबन्ध था। कृत्रिम जलाशय भी पाये जाते हैं, जिनमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ रहती थीं। वे इतने विस्तृत थे कि उनमें तैरा भी जा सकता था। साथ ही स्थान-स्थान पर कुएँ भी थे।

सड़कों पर दूकानें भी थीं। भण्डार थे—जिन्हें अनाज का गोदाम भी कहा जा सकता है। कुछ इमारतें हवेलीनुमा हैं, जिनमें सूचित होता है कि वे समाज के प्रशासकों या व्यवस्थापकों की रही होंगी।

**व्यापार-व्यवसाय**—अर्थ-व्यवस्था, मूलतः खेती-बारी पर आधारित थी। गेहूँ और जौ की फसलों के अलावा, कपास की पैदावार खूब होती थी। वस्त्रोद्योग अत्यन्त विकसित था। रेशम और ऊन के भी कपड़े बनाये जाते थे।

सिन्धु-सभ्यता के लोग दूर-दूर के देशों तक व्यापार के लिए जाते थे। इस सभ्यता की वस्तुएँ और मुद्राएँ ईरान और इराक के प्राचीन ध्वंसावशेषों में

पाई गई हैं। उन दिनों इराक में, कपड़े का नाम 'सिन्धु' था। यूनान के कपड़े को 'सिन्दन' कहा जाता; वह 'सिन्धु' शब्द ही का विकृत रूप था।

व्यापार जल तथा स्थल दोनों प्रकार के मार्गों द्वारा होता था। सिन्धु नदी में नावें चलती थी। पुरातत्वविदों का कहना है कि सिन्धु-सभ्यता का व्यापार मिस्र ईरान और इराक से खूब होता था।

**शासन-प्रबन्ध**—अफगानिस्तान से मथुरा तक, पंजाब से खम्भात तक के इस विस्तृत क्षेत्र में आखिर आदमी का काम बिना शासन-प्रबन्ध के चल नहीं सकता था। संभव है कि प्रत्येक नगर की केन्द्रीय समिति, जो वहाँ के तजुर्बेकार बुजुर्गों की बनाई होती थी (उसे हम नगरपालिका भी कह सकते हैं) शहर के कामों की देख-रेख करती होगी। और उन्हीं का बना कोई संघ और उनका नेतृ-वर्ग सारे प्रदेश का कार्य-संचालन करता होगा। ये नगरपालिकाएँ बहुत कार्यदक्ष थीं, साफ-सफाई के प्रबन्ध का इसे बहुत ध्यान था।

विद्वानों का अनुमान है कि इन नगरपालिकाओं द्वारा धार्मिक-सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक प्रशासन हुआ करता था ! कई उद्योग, जैसे, वस्त्रोद्योग, जिनके लिए श्रमिक संगठन की आवश्यकता होती थी, नगरपालिकाओं के नियंत्रण में चलते थे। आटे की चक्कियाँ भी इसी तरह चलती होंगी।

बहरहाल यह सही है कि राजसत्ता का प्रथम आविर्भाव सिन्धु सभ्यता में देखा जा सकता है।

**धर्म**—सिन्धु सभ्यता के निवासी (१) मातृ देवियों के (२) पशुपतिनाथ शिव के (३) तथा प्रजनन शक्ति के उपासक थे। इसके अतिरिक्त वे (४) वृक्ष तथा पशुओं को भी मानते थे। भग्नावशेषों में हमें मातृ देवियों की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। एक ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके तीन मुख्य हैं, सिर पर सींग है, उसके आस पास भैंस, गैंडा, हिरन और हाथी है। पुरातत्वविदों के अनुसार, यह पशुपतिनाथ शिव हैं। ऐसी अभी तक तीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। शिवलिंग

भी मिले हैं। पीपल के वृक्ष और पशुओं की प्रतिमाएँ भी मिली हैं। एक योगाभ्यासी ध्यान मुद्रा भी प्राप्त हुई है, जो शिव को मालूम होती है।

**कला कारीगरी**—सिन्धु सभ्यता वाले सुन्दर बरतन बनाते थे। वे मिट्टी के भी होते थे और धातुओं के भी। मिट्टी के बर्तनों पर सुन्दर चित्रकारी होती थी मोहनजोदड़ो की खुदाई में हाथी दाँत का एक बहुत सुन्दर फूलदान पाया गया है, जिस पर खुदे हुए मनोहर रेखा चित्र हैं। इन भग्नावशेषों में चाँदी और ताँबे के बरतनों में बन्द आभूषण भी मिले हैं। उनका गठन सुन्दर है, बनावट कलात्मक है। उनमें मालाएँ, बाजूबन्द, चूड़ियाँ भी हैं। सोना, चाँदी, लाल, पन्ना, मूंगा आदि का प्रयोग करके आभूषण बनते थे। दर्पण और कंधों का भी प्रयोग होता था। भग्नावशेषों में एक नर्तकी की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा मिली है। उसके मस्तक पर सुन्दर केश-संभार है। छोटे-छोटे वाद्य भी प्राप्त हुए हैं।

इतनी समृद्ध सभ्यता के अन्तर्गत उपयोग में आने वाले अस्त्र भी हमें प्राप्त हुए हैं, जो ताँबे या काँसे के हैं। कुल्हाड़े, तलवार, कटार, धनुष, बाण, भाले आरी, मछली पकड़ने के काँटे, तरह-तरह की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। माप-तौल के बॉट, गज, मुद्राएँ और सिक्के भी मिले हैं।



उनकी लिपि अब तक पढ़ी नहीं जा सकी है। वह एक प्रकार की चित्र लिपि है। उनके तीन सौ छियानवे चिन्हों की एक सूची बना ली गई है। अनुमान है कि वह आदिम द्राविड़ लिपि थी।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्राओं पर वैल

पर वैल

सिन्धु-सभ्यता का नाश ईसा के कोई ढाई हजार साल पहले वाह्य आक्रमणों द्वारा हुआ। ये आक्रमण अत्यन्त बर्बर और नृशंसतापूर्ण थे। मकानों के जीनों पर ठठरियाँ जिस तरह पड़ी हुई मिली हैं, उनसे यही सूचित है कि सिन्धु सभ्यता के लोग दयनीय और विवश स्थिति में मार डाले गये। उनकी मिट्टी की मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ जिस तरह और जिस मात्रा में तोड़-फोड़ दी गई हैं उनसे भी यही सूचित होता है।

ईसा के कोई तीन हजार साल पहले जब आर्यों का भारत में आगमन हुआ तो उन्होंने परकोटों से घिरे हुए अनेक शक्तिशाली नगरों को पाया। आर्य उनके निवासियों को दास, दस्यु, परिण, असुर आदि नामों से पुकारते थे। उनसे घृणा करते थे किन्तु उन्हें कलाविद, मायावी, ऐन्द्रजालिक, नगर-निर्माता, अनेक विद्याओं के ज्ञाता समझते थे। ऋग्वेद से हमें ज्ञात होता है कि उनसे आर्य जाति एक लम्बे असें तक युद्ध करती आयी। ऋग्वेद में एक नगर का नाम आया है, जिसे वे 'हरियुपिया' कहते थे। वह सिन्धु-सभ्यता का हरप्पा नगर ही है। इस सभ्यता के सम्बन्ध में हमारा जो ज्ञान है, उसके द्वारा अब तक दुर्बोध समझी जाने वाली वैदिक ऋचाओं का अर्थ सुस्पष्ट हो जाता है। आर्यजनों से निरन्तर युद्धों का परिणाम यह हुआ कि सारी सभ्यता ही नष्ट हो गई। भारत की इस प्रथम सभ्यता के निवाश का श्रेय आर्यों को ही दिया जाना चाहिए।

ऐसा क्यों हुआ—उन दिनों जातियों का परस्पर संघर्ष उपजाऊ भूमि पर अधिकार करने के लिए होता था। आर्य-जाति भारत में ऐसी ही भूमि की तलाश में आई थी जहाँ वह बस सके और अपना विकास कर सके। इस मूल कारण के अतिरिक्त घृणा को उत्पन्न करने वाले दूसरे तत्व भी प्रमुख हो उठते थे—जैसे वर्ण और धर्म।

आर्य ग्रामों में रहते। उनकी सभ्यता ग्राम-सभ्यता थी, नगर-सभ्यता नहीं। आर्यजन सिन्धु-सभ्यता वाले जैसे न मूर्ति-पूजक थे न लिंग-पूजा करते थे। ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है—'हे देव, तुम हमें शिष्णो देव से बचाओ।'।



सिन्धु-सभ्यता वाले अनास ( चपटी नाक वाले ) थे, कुष्ण ( भूरे साँवले ) थे । आर्य गौर वर्ण थे, उनकी नाक ऊँची थी । वे अपने को श्रेष्ठ समझते थे । शेष को निकृष्ट । युद्ध अवश्यम्भावी था । वह हुआ । भारत की प्रथम सभ्यता इतिहास के पृष्ठों से उड़ गई ।

स्वयं आर्य-जन हारे हुए सिन्धु-सभ्यता वालों से बचकर नहीं रह सकते थे । इन दोनों के परस्पर सम्पर्क के निम्नलिखित परिणाम हुए :—

( १ ) पराजित शत्रु दास बना लिये गये । इस प्रकार आर्यों के समाज में 'शूद्र' जाति की उत्पत्ति हुई । यह वर्ण-भेद ( रंगभेद ) के आधार पर थी ।

शूद्रों को समाज में सबसे निचला स्थान दिया गया ।

( २ ) किन्तु आर्य जन सिन्धु-सभ्यता वाले दासों की स्त्रियों को स्वीकार करते रहते थे । इस प्रकार जो जातियाँ बनीं इनमें कर्त्तवीर-कण्व, वत्स, एलूष, कवष आदि अनेक प्रमुख आर्य ऋषियों का जन्म हुआ ।

( ३ ) सिन्धु-देशीय दासों के बहुत से देवता तथा अन्धविश्वास आर्य-धर्म में स्थान पा गये । अथर्ववेद में जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र ने प्रवेश किया । शिवलिंग तथा पशुपति शिव की पूजा, मातृ-देवताओं ( देवियों ) की आराधना, वृक्ष-पूजा ( भजे हा वह प्रयाग का अश्वत्थ हो या गया का बोधि-वृक्ष ) सर्प-पूजा उन्हीं की देन है । फलतः प्राचीन ऋग्वैदिक धर्म अथर्ववेद तक आते-आते बदल गया ।

**द्रविड़ कौन थे—** सिन्धु सभ्यता के अवशेषों का जो उत्खनन हुआ, उसके दौरान में वहाँ हमें अनेक नर-कंकाल प्राप्त हुए । नृतत्व-शास्त्रियों ने इन नर-कंकालों का अध्ययन करके यह निर्णय घोषित किया कि अधिकांश नर-कंकाल भूमध्य-सागरीय जाति के हैं ।

नृतत्व शास्त्रियों द्वारा ही यह माना जाता है कि द्रविड़-जाति भूमध्य सागरीय जाति ही की एक शाखा है। वह उस सागर के तटीय प्रदेशों आगे बढ़ती हुई, घूमती हुई, भारत तक पहुँच गई थी। निःसन्देह, मिश्र दैबिलोनिया तथा अन्य सभ्यता-केन्द्रों के प्रभाव में वह आई होगी, उनसे उसका सम्पर्क स्थापित हुआ होगा। जब वह अफगानिस्तान-बलूचिस्तान के प्रदेश आई, वहाँ उसने अनेक छोटे छोटे ग्राम तथा उपनिवेश स्थापित किये। ताम्र युग के ये अवशेष अभी भी मौजूद हैं। क्रमशः ज्ञान तथा अनुभव का अधि विस्तार होकर, उसकी अन्तिम परिणित सिन्धु-सभ्यता के आविर्भाव में हुई।

द्रविड़-जाति कला-कौशल, वाणिज्य-व्यापार तथा प्रबन्ध-व्यवस्था प्रवीण थी। उसके परिवार मातृ-सत्तात्मक थे। मातृ-सत्तात्मक समाज में सामान्यतः, मातृ-देवियों की तथा शिष्णेदेव (शिवलिंग) की पूजा होना स्वाभाविक था। आर्यों से इनका संघर्ष अनिवार्य हो उठा। ये पराजित हुए बहुतेरे अपने नगर त्याग कर पूर्व की ओर निकल गये और बिहार तक के क्षेत्र में फैल गये। कुछ राजस्थान में से निकलकर दक्षिण की ओर चले गये जो वहीं बस गये वे दास हो गये। उनसे रङ्ग-भेद के आधार पर शूद्र जाति बनी। बलूचिस्तान में ब्राहुई नामक द्रविड़-भाषा-परिवार की बोली अभी जिन्दा है। इससे सूचित होता है कि किसी काल में बलूचिस्तान में द्रविड़ का प्रभावशाली उपनिवेश था।

दक्षिण में पहुँच कर शताब्दियों तक द्रविड़-जाति अपना स्वतंत्र विस्तार करती रही। उसने लंका को भी आबाद किया। वहाँ की सिंहल भाषा द्रविड़ परिवार की है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने राज्य स्थापित किये। स्वतंत्र शासन, सुप्रबन्ध, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किये। ऐतिहासिक काल में उन्होंने दक्षिणी-पूर्वी एशिया में अनेक उपनिवेश स्थापित किये, वहाँ वे शैव, वैष्णव और बौद्धधर्म ले गये। उनके बन्दरगाहों से दक्षिण पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी देशों से खूब व्यापार होता रहा।

संस्कृत-साहित्य में द्रविड़ों को 'द्रामिल' कहा जाता रहा। उसी का बदला हुआ रूप 'तामिल' है। दक्षिणी-भारत में तेलुगू, तामिल, कन्नड़ और मलयालम इनकी प्रधान भाषाएँ हैं। अनेक उप-भाषाएँ भी हैं। तामिल सर्वाधिक विकसित भाषा है। इन चारों भाषाओं में विशाल साहित्य है। तामिल भाषा का साहित्य सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है।

द्रविड़ों ने आर्य-संस्कृति को अपना कर, उसी आर्य-संस्कृति में अनेकानेक परिवर्तन उपस्थित कर दिये। पूजा की विधि भी, इन्हीं की देन है। साथ ही उन्होंने अनेक देवी-देवता भी प्रदान किये, जैसे सर्प, वृक्ष, शिव इत्यादि।

सब विद्वानों ने यह स्वीकार नहीं किया है कि द्रविड़-जाति ने ही सिन्धु-सभ्यता स्थापित की। किन्तु पहले बताये गये मत को मानने से इतिहास की कड़ियाँ आपस में जुड़ जाती हैं। साथ ही, प्राप्त तथ्य भी उसी के पक्ष में संकेत प्रदान करते हैं, किन्तु, कोई ऐसा निर्णायक प्रमाण सामने नहीं आया है जो निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दे कि द्रविड़-जाति को ही सिन्धु-सभ्यता के विकास का श्रेय देना होगा।

## प्रश्न

१. सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत नगर व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
२. तत्कालीन सभ्यताओं के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?
३. सिन्धु-सभ्यता तथा आर्य इन दोनों के संघर्ष से क्या परिणाम निकले?
४. सैन्धव कलाकौशल का विवरण दीजिये।
५. सैन्धव वैदिक संघर्ष के मूल कारणों पर प्रकाश डालिये।
६. द्रविड़ जाति के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

## आर्य-सभ्यता का आरम्भ । २

### ऋग्वैदिक युग

[ आज से पाँच-साढ़े-पाँच हजार वर्ष पूर्व, भारत के उत्तर पश्चिम कोण में आर्य अश्वारोहियों के दल के दल एकत्र होने लगे थे । उन्हें अपनी विकास-प्रसार यात्रा में अनेक युद्ध करने पड़े । उन्होंने विविध वैचारिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया । इसके द्वारा वे एक ऐसी सभ्यता की स्थापना कर सके, जो काल के क्रूर प्रहारों को लौटाने लगी । प्रबल संघर्ष, उत्थान, समन्वय और विकास तथा पुनः संघर्ष का एक ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जिससे भारतीय समाज के जीवन और पुनरुज्जीवन, तथा नवीनीकरण के दृश्य अनेक काल-खंडों में उद्भासित हो उठे । प्राचीन सभ्यतारों परिवर्तन की अग्नि प्रक्रियाओं में पकड़कर नष्ट हो गई, किन्तु भारतीय आर्य सभ्यता सारे जीवनप्रद तत्वों को समेट कर, अनेक परिज्ञाओं में से गुजर कर अपना नवीनीकरण तथा पुनरुज्जीवन करती रही । उसके स्थायित्व का यह मूल रहस्य है । इस आर्य सभ्यता के आदि संस्थापक कौन थे और शुरू में उन्हें क्या करना पड़ा, इसकी एक हलकी-सी झलक यहाँ दी गई है ]

सभ्यता के उषःकाल में जिस जाति ने लगभग सारे योरप से लेकर ईरान और भारत वर्ष को अपनी सभ्यता और संस्कृति प्रदान करते हुए विश्व-इतिहास को एक नया मोड़ दिया, वह आर्य-जाति या उसकी शाखा ईसा के तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व भारत के दरवाजे आकर खड़ी हुई । उसके अश्वारोही वीरों ने पश्चिमोत्तर ( बलूचिस्तान अफगानिस्तान ) के आर्येतर सभ्यता केन्द्रों

को नष्ट किया। क्रमशः ये आर्य सत-सिन्धु (पञ्जाब) के प्रदेश में अपने उपनिवेश स्थापित करने लगे ! आर्य-जायियाँ एक नहीं, अनेक समूहों और प्रभावों में आई और उनका प्रारम्भिक प्रदेश तथा, उसके अनन्तर, सत-सिन्धु के विभिन्न प्रदेशों में उनके द्वारा उपनिवेशों की स्थापना और प्रसार के बीच एक सहस्र से अधिक वर्ष बीत गये।

**देवासुर-संग्राम**—आर्य-जन भारत की ओर मुड़ने के पहले ईरानी आर्यों के साथ मध्य एशिया में कहीं घूम रहे थे। ईरानी आर्य तथा हमारे आर्यों के बीच, किन्हीं बातों को लेकर, विशेषकर धार्मिक तत्वों के विषय में, घनघोर मतभेद हुआ। इस मतभेद ने परस्पर घृणा, तिरस्कार और युद्ध का रूप धारण कर लिया। हमारे लिए जो पूज्य थे वे उनके लिए घृणास्पद और उनके लिए जो श्रेष्ठ थे वे हमारे लिए दुष्ट हो उठे। हमारे यहाँ असुर शब्द का अर्थ बहुत बुरा है, उनके यहाँ देव शब्द का अर्थ बहुत बुरा है। उनके धर्म-ग्रन्थ जेन्द-अवस्ता तथा हमारे धर्म-ग्रन्थ वेद के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि हम दोनों की भाषाएँ लगभग समान थीं, आचार-विचार भी लगभग समान थे, साथ ही देवता भी समान थे। मित्र, वरुण, नासत्य, अग्नि, सूर्य आदि की आराधना हमारे यहाँ भी होती थी, उनके यहाँ भी। किन्तु, जिन्हें हम असुर कहते हैं, वे उनके लिए पूज्य हुए। अहुर मज्द उनका सर्वोपरि देवता था। वह असुर महत् है। हमारे यहाँ इन्द्र, असुरों को मारने वाला देवता है। वृत्रासुर की कथा हमारे यहाँ भी है, उनके यहाँ भी है। हमारे लिए वृत्रासुर दुष्कर्मों का निधान है; उनके लिए वह गुणों की खान है। वे इन्द्र को बुराई की जड़ समझते हैं। हमारे यहाँ वरुण महान् होते हुए भी असुर हैं। उनके लिए वरुण

महत्तम है, श्रेष्ठतम हैं। एक युग में, वरुण हमारे लिए भी श्रेष्ठतम था। ऋग्वेद के मन्त्रों से सूचित होता है कि वह विश्व-व्यवस्था या ऋत का प्रतीक माना जाता था। संक्षेप में, मध्य-एशिया से भारत आने के पूर्व इनके बीच कलह और संघर्ष था। इसी संघर्ष की एक झलक हमारे यहां देवासुर-संग्राम की कुछ कथाओं में भी देखी जा सकती है।

**दाशराज्ञ युद्ध**—आर्यजन आपस में भी लड़ते थे। आर्य-जाति स्वयं कई 'जनो' ( कबीलों ) में बँटी थी। उनमें पाँच प्रमुख थे—यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु और पुरु। इनके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में, गान्धारि, पक्थ ( पख्तून ), केकय, अलिन, विशाणिन, शिव, और मलान भी थे। त्रित्सु और सञ्जय नामक जन भी थे। आर्य अब सप्तसिन्धु के प्रदेश में पहुँच चुके थे। यह सप्त-सिन्धु प्रदेश आर्यों का पञ्जाब ही है, जिसको वितस्ता (भेलम), असिकनी ( चिनाब ), परुषणी ( रावी ), विपाशा ( व्यास ) शतद्रु (सतलज), सरस्वती ( जो अब गुप्त हो गई है ) तथा सिन्धु अपने जल से सिंचित करती थीं।

यह स्वाभाविक ही था कि भूमि के लिए आर्य-जातियों में परस्पर युद्ध हो। उस काल में पुरु-जाति का बहुत प्रभाव था। किन्तु, साथ ही भारत नामक जाति भी बहुत महत्वाकांक्षी थी। 'पुरु आर्य' कहलाने वाले आर्यजन अपने को शुद्ध रक्त वाले समझते थे। इन्होंने ही दास राज्यों को नष्ट किया होगा। इस बात का प्रमाण नहीं मिला है कि इन आर्य जातियों के अपने-अलग-अलग राज्य हुआ करते थे। उनके पृथक्-पृथक् नेता अवश्य थे। ये नेता कभी-कभी राजा कहलाते थे।

इसके विपरीत, भरतों का अपना एक वास्तविक राजा था। उनका राज्य यमुना के पूर्व में था। इस राज्य में पश्चिमोत्तर प्रदेश से भागे हुए आर्येतर थे ही, हिमालयीन अञ्चल में रहने वाले यक्ष-गन्धर्व आदि जातियाँ भी थीं। ये जातियाँ यहाँ बहुत पहले से रही थी। भरत जाति का राजा सुदास था। सुदास ने आर्येतरों का भी एक संघ बना लिया। उसका नेतृत्व 'भेद' नामक एक आर्येतर पुरुष के पास था। सुदास, भरत-जाति का राजा था, न कि नेता। इसके विपरीत, पश्चिम की ओर के आर्य, अभी 'नेता' ही थे। पुरु जाति ने, दस आर्य जातियों का एक संघ बनाया, जिसमें अलिन (काफिरिस्तान), पश्य (पख्टून) भालानस (बोलन दर्रे के समीपवर्ती क्षेत्र के निवासी), शिव (सिन्धु) तथा विषाणिनि एवं पञ्जाब के पुरु, यदु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्य भी शामिल थे।

आर्येतर जन दोनों ओर से लड़े। राजा सुदास की विजय हुई। पुरुजनों का प्राधान्य समाप्त हो गया।

सुदास अपनी इस सफलता से सार्वभौम नरेश बन गया। उसने जीते हुए राज्यों को अपने राज्य में नहीं मिलाया वरन् अपना आधिपत्य स्वीकृत कराने के लिए उनसे कर वसूल करता रहा। अधिपति की यह भावना बाद में चल कर 'सम्राट' की कल्पना में बदल गई।

**आर्य-जीवन**—आर्यों की सभ्यता मुख्यतः, ग्राम-सभ्यता थी। वे पशु-पालक भी थे, खेतिहर भी। शुरू-शुरू में, अश्वों का महत्त्व बहुत था। किन्तु, अब गाय काम-धेनु होकर पवित्र बन गई। बैलों की सहायता से खेती की जाने लगी। गाय का दूध पुष्टिकर था। इसीलिए, वह 'अधन्या' (अवध्य) हो उठी।

जो, गेहूँ, माष ( उड़द ), तिल प्रमुख खाद्यान्न थे । मांस भी खाया जाता था । तक्षमन ( बढ़ई ), वाय ( तन्तुवाय, जुलाहा ), कर्मर ( धातु का काम करने वाला ), हिरण्यकार ( सुनार ) आदि व्यवसायियों का उल्लेख भी वेदों में पाया जाता है । दास तो स्वयं शिल्पी ही थे । वे या तो नौकरी करते या गुलामी । आर्य चाँदी, सोने तथा लोहे की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ बनाते । वस्त्रनिर्माण एक प्रमुख उद्योग था । वे ऊन और रेशम भी तैयार करते । सिन्धु-सभ्यता वालों से उन्होंने वस्त्रोद्योग अवश्य सीख लिया होगा ।

वैदिक साहित्य में ' पणि ' नामक एक जाति का उल्लेख आता है । सम्भवतः यह पणि जाति, भूमध्य सागर तट पर, फिलिस्तीन के पास, रहने वाले फिनीशियनों की ही शाखा होगी । भारतीय आर्यों का उनसे खूब परिचय था । पणि एक व्यापारी जाति थी । व्यापार के लिए, वस्तु विनिमय ही सबसे अच्छा साधन था । मुद्राओं का ( सिक्कों का ) शायद चलन नहीं था । वैसे वेदों में, ' निष्क ' नामक एक स्वर्ण-मुद्रा का उल्लेख आता है । सम्भवतः आर्य स्थल और जल मार्गों द्वारा दूर-दूर के देशों में पहुँचते होंगे ।

इनके परिवार पितृ-सत्तात्मक थे । स्त्रियों का उचित सम्मान था । ऋषियों की श्रेणी में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी शिक्षिता नारियाँ भी थीं । बाल-विवाह का नाम नहीं था । विधवा-विवाह खूब होते थे । पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था; किन्तु स्त्री का एक ही पति होता था । ' स्त्रियों और सूत्रों को शिक्षा नहीं देनी चाहिए ' यह विचार वैदिक युग में विद्यमान नहीं था । स्वयंवर प्रचलित थे । लड़कियों का उपनयन संस्कार होता था, वे जनेऊ पहनतीं और ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं ।



वर्ण-व्यवस्था का किसी न किसी रूप में उदय हो चुका था। सर्वोच्च वर्ग दो थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय। शेष 'विशः' कहलाते। ऋषि भी वंशानुक्रम से होते; वैसे ही कभी-कभी राजा भी। किन्तु, राजा का बहुत बार चुनाव भी होता। 'सभा' और 'समिति' नामक दो सभाएं भी थीं, जो राजा को सलाह देतीं। राजा भूमि का अधिपति नहीं, वरन् जन का नेता होता था। उसे समाज के अनुशासन के अन्तर्गत नियमों का पालन करते हुए काम करना पड़ता था। वर्ण, जन्म के अनुसार तो थे ही तथा कर्म के अनुसार भी थे। कोई भी व्यक्ति अपनी निपुणता, तप, विद्वत्ता के आधार पर ब्राह्मण बन सकता था। इसी प्रकार, कोई भी आर्यजन अपनी वीरता के द्वारा क्षत्रिय बन सकता था। वैदिक आर्यों ने समाज-व्यवस्था का स्पष्टीकरण करने के लिए, समाज को मानव शरीर की उपमा दी है। पुरुष-सूक्त में हम पढ़ते हैं कि शीर्ष-स्थानीय ब्राह्मण थे, क्षत्रिय बाहु के समान, पेट और जंवाओं की भाँति वैश्य और शूद्र पैरों के समान थे।

**वैदिक धर्म**—वैदिक आर्यों ने सृष्टि की शक्तियों में देव-रूप देखा। ऋग्वेद में जो देवता हैं वे प्रकृति के नाना रूपों और शक्तियों के प्रतीक हैं। आगे चलकर, उन्होंने कण-कण में समाये परमात्मा की भावना की। प्रारम्भ में वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के उपासक थे। हम वैदिक देवताओं को तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) सर्वोच्च शून्याकाश के देवता, जैसे द्यौस्, अश्विन, सूर्य तथा उसके विभिन्न रूप जैसे सविष्ट, उषस् और इनके अतिरिक्त, विष्णु और वरुण (२) पृथ्वी के देवता जैसे अग्नि, सोम, सरस्वती तथा पृथ्वी। और इन दोनों के बीच, (३) अंतरिक्ष के देवता जैसे इन्द्र, वायु, पर्जन्य, मरुत। इनमें सर्वाधिक प्राचीन हैं—द्यौस् तथा पृथ्वी। द्यौस् या द्यौः आकाश का चमकता देवता था। वह हमारा पिता था, पृथ्वी हमारी माता थी। किन्तु, ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता गया, द्यौः के स्थान पर वरुण का तथा इन्द्र का माहात्म्य बढ़ता गया। वरुण—आकाश का देवता और इन्द्र—मेघ-गर्जन तथा वर्षा का देवता। आगे चल कर, वरुण समुद्रों का, जल का भी देवता बना। यही नहीं, वह सत्य और ऋत (विश्व-व्यवस्था, सृष्टि-व्यवस्था, समाज,

व्यवस्था, नैतिकता आदि सब का ) देवता बना । विश्व के त्रिकालदर्शी शासक और अनुशासक के रूप में उसकी कल्पना की गई । पाप-शान्ति के लिए लोग उससे क्षमा-याचना करते ।

मन्त्र-दृष्टा ऋषियों ने वरुण के प्रति कुछ अतिशय रसाद्र स्तवन किये हैं । वरुण के पश्चात् सर्वाधिक लोकप्रिय देवता इन्द्र है । वह देवों का अग्रणी अर्थात् नेता था । वह वर्षा करता, शत्रुओं के दुर्गों का विध्वंस करता । युद्ध में विजय भी प्राप्त करने के लिए आर्य उसकी प्रार्थना करते । इसके अतिरिक्त सूर्य के विभिन्न रूप—पूषा, मित्र, सवितृ इत्यादि भी आर्यों के प्रिय देवता थे ।

पृथ्वी-स्थी देवताओं में अग्नि तथा सोम प्रमुख थे । इनमें भी अग्नि का महत्वपूर्ण स्थान था । अग्नि भक्तों द्वारा दी गई आहुतियों को देवताओं तक पहुँचाता । वह संवाद-वाहक था । सोम नामक वल्ली से मादक पेय निकाला जाता । रहस्यपूर्ण ढंग से सोम की समता चन्द्रमा से की गई थी, यहाँ तक की चन्द्रमा का एक नाम भी सोम हो गया । चन्द्र वनस्पाति-जगत् का नियंत्रण करने वाला देवता था । वैदिक विद्वानों का विचार है कि 'विष्णु' नामक देवता का प्रादुर्भाव बहुत बाद में हुआ ।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देवता थे, जैसे यम, रुद्र, प्रजापति इत्यादि ।

वैदिक ऋषि मंत्रों और स्तवनों द्वारा देवताओं का आवाहन करते । ये मंत्र यज्ञ के समय पढ़े जाते । यज्ञाग्नि में घृत, दूध, अन्न, आमिष (मांस) तथा सोम को डाल कर मंत्र-पाठ किया जा । वैदिक विधि यज्ञों पर आधारित है । कर्मकाण्ड की बहुलता थी । किन्तु मन्त्रों तथा स्तवनों में, देवताओं के प्रति सच्चे भक्ति-भाव का भी परिचय मिलता है ।

आर्यों की धर्म-दृष्टि की बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि वे देवताओं की सहायता से इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहते थे । उनके धर्मोपदेश संसार से विरक्ति या पलायन नहीं सिखाते थे, वरन् वे इसी जगत् की सर्वाङ्गीण समृद्धि

के लिए देवताओं का आवाहन करते थे। आर्य-जन आशावादी थे। उनका अन्तःकरण प्रसारशील था।

वे मूर्तिपूजक नहीं थे, देवताओं के लिए मन्दिर नहीं बनाते थे। प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति, उनका हृदय सहज रूप से आकर्षित होता। प्रभात की मनोरम सौन्दर्य-आभा को 'देवी' का रूप देना, उनकी कल्पना का सुन्दर नमूना था। ऋग्वेद में उषा के प्रति जो ऋचाएँ कही गई हैं उनमें काव्य की मनोरम आभा है।

किन्तु, इसके बावजूद, वे मातृ-देवियों के पूजक नहीं हैं। वैदिक धर्म में पुरुष भावों की प्रधानता है। उसमें एक ताजगी है, नवीनता की संवेदना है, विकास और प्रसार की भावनाएँ हैं। उस धर्म में, स्वर्ग का तो उल्लेख है, किन्तु नरक का कहीं नहीं। पापी मनुष्य को इसी लोक में दण्ड दे दिया जाता था। उसके लिए नरक के विधान की आवश्यकता नहीं थी। यह हमारा प्रारम्भिक वैदिक धर्म है।

वैदिक ऋषियों में सर्वाधिक प्राचीन वैवस्वत् मनु हैं। किन्तु, प्रधान हैं—गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और बशिष्ठ। इनके अतिरिक्त, कण्व, अंगिरस, शिवि, औशीनर, प्रतर्दन, मधुच्छन्दा, देवापि के नाम तथा अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ये सब ऋग्वेद के ऋषि हैं। वेदों की रचना क्रमशः होती गई। तिलक के अनुसार, ऋग्वेद की रचना ईसा के ६००० साल पहले और प्रो० जैकोबी के अनुसार ईसा के ४००० साल पहले हुई। प्रोफेसर विण्टरनिज ऋग्वेद की रचना ईसा से कम से कम २५०० साल पहले बताते हैं। यही काल आजकल सर्वमाध्य है। मुख्य बात यह है कि सिन्धु सभ्यता के अन्त के पहले ऋग्वेद की रचना हो रही थी। यह निश्चित है।

वैदिक आर्य-धर्म, आर्यों की किन्हीं अति प्राचीन परम्पराओं के आधार पर बना है। यही कारण है कि बैबिलोनिया को नष्ट करने वाले कासाइट, एशिया मायनर में राज्य स्थापित करने वाले हिट्टाइट, तथा मिटन्नी जातियों में, न

केवल भारतीय वैदिक संस्कृत नाम मिलते हैं, वरन् वैदिक देवताओं के नाम से व्यवहार भी होता था। इन्हीं वैदिक देवताओं में से कुछ ईरानी आर्यों में प्रधान हैं। मध्य एशिया के मैदानों में, जब मूल आर्य-जाति घूम रही होगी, तब उस समय भी इसी वैदिक धर्म का कोई प्राचीनतर रूप उसका भी धर्म रहा होगा। हाँ, यह सच है कि भारत में आकर, उनमें नये भाव आये, नई परम्पराएँ जुड़ीं।

ऋग्वेद में जो स्थल निर्देश हैं, उनसे सूचित होता है कि आर्य अभी पंजाब छोड़कर उसके आगे पूर्व की ओर अधिक नहीं बढ़े थे। किन्तु पंजाब में बसे आर्यों का, पश्चिमोत्तर में रहने वाले आर्यों से अधिक सम्पर्क नहीं रहा। यजुर्वेद में, मुख्यतः ब्रह्मावर्त तथा सतलज और यमुना के बीच के स्थानों का संकेत है। अतः यह अनुमान स्वाभाविक हो जाता है कि आर्यों के उपनिवेश यमुना-तट तक पहुँच चुके थे।

यजुर्वेद तक आते-आते वैदिक धर्म में कर्मकाण्ड की प्रधानता हो चुकी थी। फलतः, पौरोहित्य का कार्य बढ़ गया था। यज्ञ-याग की विधियों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाने लगा, तथा बाह्य नियमों के पालन ही को धर्म समझा जाने लगा। यजुर्वेद संहिता में गद्य और पद्य दोनों हैं। सूक्त छन्दोबद्ध हैं। कुछ सूक्त ऋग्वेद में से ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं।

सामवेद संहिता का अधिकांश भाग, ऋग्वेद में से ही लिया गया है। सामवेद का उद्देश्व वेद-मंत्रों को गेय बनाना है, ऐसे वेद-मंत्रों को, जिनका पाठ यज्ञों के निमित्त हुआ करता था।

अथर्ववेद बहुत बाद की चीज है। इस संहिता में इन्द्रजाल, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना इत्यादि भरे पड़े हैं। स्पष्टतः यह आर्येतर संस्कृति का ही प्रभाव है। इसके बारे में बताया जा चुका है। किन्तु साथ ही उसमें पृथ्वी सूक्त जैसे सुन्दर सूक्त भी हैं। अथर्ववेद में व्रात्य स्तोम यज्ञ का विधान है। इस यज्ञ के द्वारा व्रात्यों को 'शुद्ध' करके उन्हें ब्राह्मण बना लिया जाता था। व्रात्य अपनी जातियों का प्रतिनिधित्व करते थे और वे अपनी स्वतंत्र परम्परा चलाते रहे।

व्रात्य ब्राह्मण विरोधी थे। संक्षेप में अथर्ववेद तक आते-आते वैदिक-धर्म में परिवर्तन आरम्भ हो गया। अथर्ववेद में शिवलिंग को भी स्थान मिला, उस शिवलिंग को, जो सिन्धु सभ्यता का प्रतीक देवता था। पशुपति शिव तथा शिवलिंग की पूजा यजुर्वेद से ही शुरू हो गई थी। वह देवता अश्वमेधयज्ञ तक में स्थान पा गया।

वेद 'श्रुति' भी कहलाते हैं, इसलिए कि शिष्य, उन्हें गुरुओं से सुन-सुन कर, कण्ठाग्र कर लेते थे।

महान् विद्वान् ऋषि बादरायण वेदव्यास ने उनका संकलन किया। इस लिए, ये चारों वेद संहिताएँ कही जाती हैं। संहिता का अर्थ है एकत्र रखना— अर्थात् संकलन करना वेदों का जो रूप आज विद्यमान है वह भगवान् वेद-व्यास का दिया हुआ है। उन्होंने पुराणों का भी संकलन किया। भगवान् वेद व्यास की माता कृष्ण वर्ग की केवट जाति की शूद्र स्त्री थी। इनके पिता एक आर्य ऋषि थे। वेदों को संहिता-रूप देने वाला महान् द्रष्टा वेद-व्यास इस बात का साक्षी है कि जिस भारतीय आर्य-सभ्यता का विकास हुआ है उसमें आर्येतर तत्त्वों का समावेश स्वाभाविक हो उठा था।

### प्रश्न

१. वैदिक आर्य-जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।
२. व्रात्य कौन थे? सविस्तार वर्णन कीजिये।
३. वैदिक देवताओं के विषय में आप क्या जानते हैं?
४. वेद श्रुति क्यों कहे जाते हैं? वैदिक संहिता का क्या अर्थ है?
५. प्रारम्भिक युद्धों का वर्णन करते हुए बताइये कि आर्यों में जाति व्यवस्था का उदय किस प्रकार हुआ?
६. निम्नलिखित बातों में से किन्हीं तीन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :—  
दशराज युद्ध, बादरायण वेदव्यास, वरुण, अथर्ववेद।
७. ऋग्वेदकालीन नारी की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालिये।

× × × × ×

## उत्तर वैदिक काल । ३

### ब्राह्मण युग

[ यह युग आर्य-संस्कृति के प्रसार और विकास, अभ्युत्थान और उत्कर्ष तथा विभिन्नीकरण का युग है। वैदिक सभ्यता की सरिता अब यहाँ महानद बन रही है। अनुभूति और तर्क, चिन्तन और अन्वेषण ने देश भर में नया वैचारिक वातावरण बना दिया है। भारतीय मस्तिष्क अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ जगमगाने लगा है, जिसका प्रभाव विश्व के विभिन्न देशों और विभिन्न सहस्राब्दियों में विस्तृत और घनीभूत होता रहा। ]

भारतीय इतिहास में उत्तर वैदिक काल का विशेष महत्त्व है। इस काल में अभ्युदय और उत्कर्ष, विस्तार और प्रसार के साथ ही, मतभेद और ऊहा-पोहा, व्याख्या और विश्लेषण, अनुभूति और साक्षात्कार, विचार-स्वातंत्र्य और विरोध, अनुरोध और अन्वेषण की एक बहार आ गई। और बहार सदियों तक ऐसी टिकी कि आज भी उसका सौरभ और यूरोप के तत्त्व-चित्तों को अनुभूत होता है।

इस काल में हमारे धर्म, दर्शन, नीति, आचार-विचार, मत-विश्वास आदि की प्रधान रूपरेखा निश्चित और सुस्पष्ट हो गई।

वह एक बहुत लम्बा जमाना था, जो कम से कम आठ सौ, नौ सौ वर्षों तक टिका। ईसा के २००० साल पहले से शुरू होकर वह लगभग एक हजार साल तक अर्थात् महाभारत युद्ध तक रहा। इस प्राचीन युद्ध का समय ई० पू० १०००-६०० वर्ष माना जाता है। महाभारत-युद्ध के बाद, भारतीय समाज फिर बदलने लगा।

आर्य संस्कृति का विस्तार जो पश्चिम कोण से शुरू हुआ था, वह क्रमशः यमुना, गंगा, सदानोरा ( गण्डक ) के पार दक्षिण तथा उत्तर बिहार और अंग ( उड़ीसा ) तक पहुँच गया। उधर, आर्यों ने अपने उपनिवेशों का क्रमशः विस्तार करते हुए, विन्ध्याचल पार कर लिया और उन्होंने गोदावरी नदी के उत्तर के तटोय प्रदेशों में भी अपने राज्य स्थापित कर लिये। कृष्णन्तो विश्ववार्यम्' के सिद्धान्त का प्रयोग अभूतपूर्व रूप से सफल होता गया।

किन्तु, इस बीच नई-नई आर्य जातियाँ, पूर्वोत्तर आर्य जातियों के परस्पर विलयन से बहुसंख्यक होकर नया रूप और नाम, प्रदेश और राजनीति लेकर उपस्थित हुई थीं। कुरु और पाँचाल राज्य अब प्रधान हो उठे। कुरुओं की राजधानी आसन्दोवत थी तथा पाँचालों की काम्पिल्य। इनका प्रदेश पूर्वी पंजाब अर्थात् सरस्वती नदी से लेकर यमुना तक का प्रदेश समझ सकते हैं। इनके पूर्व में, कोशल ( अवध ), काशी और विदेह ( उत्तर बिहार ) तथा मगध ( दक्षिण बिहार ) और अंग ( उड़ीसा ) के राज्य बन गये यहाँ तक कि नये प्रदेशों के साथ, नयी जातियों के नाम भी सुनाई पड़े, जैसे दक्षिण-पश्चिम में पुलिन्द, मध्य प्रान्त तथा उड़ीसा के शबर, बंगाल के पुंड्र, और इनके अतिरिक्त आंध्र, यहाँ तक कि अब (ऐतरेय और जैमिनीय ब्राह्मण ग्रन्थों में) विदर्भ का नाम भी सुनाई दिया। पूर्व तथा दक्षिण की ओर प्रसार पाने वाली आर्य-जातियों में वर्ण-शंकरता बढ़ती ही गई। फलतः, उत्तर, तथा पश्चिम के आर्य—जैसे कुरु तथा पाँचाल, उनके प्रति असम्मान और अनादर के भाव रखने लगे। ये आर्य उन्हें निम्न समझते थे।

किन्तु, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्व के आर्य क्रमशः प्रभावशाली होने लगे। आर्य-संस्कृति का केन्द्र भी धीरे-धीरे पूर्व की ओर हटता जा रहा था। महाभारत-युद्ध के काल तक वह पश्चिमो पंजाब से पूर्वी पंजाब अर्थात् सरस्वती और गंगा के मध्य के प्रदेश में आ गया। महाभारत-युद्ध के बाद वह धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ता हुआ दक्षिण बिहार अर्थात् मगध में पहुँच गया। किन्तु महाभारत-युद्ध के समय, मगध एक पिछड़ा हुआ और वर्चस्वपूर्ण प्रदेश समझा जाता था।

उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भ होते ही, अब हमें भव्य नगरों और विस्तृत राज्यों के उल्लेख मिलने लगते हैं, और वे उल्लेख क्रमशः बढ़ते जाते हैं। साथ ही राजा-नामधारी नेता अर्थात् नरेश की सत्ता समाप्त होकर उसके स्थान पर वास्तविक राज्यों और सर्वाधिकार या परमाधिकार ( अर्थात् सर्वोच्च अधिकार ) वाले राजाओं का अभ्युदय होता है। युद्धों में नरेशों ने जो सफल नेतृत्व किया वही नेतृत्व अब अधिनायकत्व बन गया। राजा लोग अपनी प्रजा पर अनियंत्रित राज्य-सत्ता रखने का दावा करने लगे। जन-साधारण से तरह-तरह के कर लिये जाते, जिसमें 'बलि' 'शुल्क' और 'भाग' नामक कर मुख्य हैं। उधर राजा में दैवी गुण माने जाने लगे। जो राजा अनेक युद्धों में सफल हो जाता उसे सार्वभौम, एकराट्, विराट्, अधिराज माना जाता। वह अब 'राज-सूर्य', 'अश्वमेध' आदि यज्ञों का विधान कर, अपने राज्य को 'साम्राज्य' में परिणत करने का स्वप्न देखता। हाँ, उसे ब्राह्मणों की सत्ता अवश्य माननी पड़ती थी।

उत्तर वैदिक काल में राजतंत्र के विकास के साथ-साथ गणतंत्र का भी विकास हुआ। ये गणतंत्र कई तरह के थे। हिमालय के उत्तर-कुरु और उत्तर-भद्र नामक प्रदेशों में गणतंत्र-व्यवस्था को वैराज्य कहते और प्रधान शासक नेता को 'विराट्'। उसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम में सात्वतों (यादवों) का जो प्रदेश था, वहाँ समाज का मुखिया ही राजा था अर्थात् वह संघ का मुख्य नेता था, न कि वंशानुक्रमगत राजा। उस शासन-व्यवस्था को भोज्य कहा जाता, और राज-प्रमुख को भोज। दक्षिण पश्चिम के सुराष्ट्र, सुवीर, कच्छ आदि प्रदेशों में 'स्वराज्य' प्रथा प्रचलित थी, तथा वहाँ का शासक 'स्वराट्' कहलाता। यह शासक वस्तुतः समान अधिकार वाले जन-सामान्य में केवल ज्येष्ठ होता था और अपने कर्मों से श्रेष्ठ माना जाता था। वह वस्तुतः, वहाँ कुलीन घरानों का शासन था। सब कुलीन घरानों के अधिकार समान थे। मध्य-प्रदेश में ( कुरु, पांचाल कोशल आदि में ) 'राज्य' नामक शासन-व्यवस्था थी। वहाँ का शासक राजा कहलाता। यहाँ वस्तुतः वंशानुगत राजा होता - उसी प्रकार पूर्व दिशा में मगध, कलिंग ( उड़ीसा ), बंग में 'साम्राज्य'



नामक राज्य-व्यवस्था थी। वहाँ का शासक 'सम्राट' कहलाता और उसका विधिपूर्वक राज्याभिषेक होता।

**वर्ण-भेद**—वर्णाश्रम-व्यवस्था दृढ़ हो चुकी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार वर्ण स्थापित हो चुके थे। ब्राह्मणवर्ण सर्वोच्च वर्ण था; और शेष वर्ण क्रमशः निम्नतर थे। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम भी आयु की क्रमिक अवस्थाओं के अनुसार थे। ये आश्रम शूद्रों के लिए नहीं थे। शूद्र वर्ण, ऋग्वेद काल में तो आर्य विशः (आर्यजन) से अलग था; किन्तु अब वह व्यवस्था-बद्ध समाज की ही एक विशेष श्रेणी के रूप में स्थापित हुआ। विभिन्न वर्णों में विवाह अब भी होते थे। उनसे वर्ण-शंकर जातियाँ बनती जाती थीं। जाति (वर्ण) कर्मणा होने के अतिरिक्त जन्मना भी थी। यद्यपि समाज में ब्राह्मणों का प्राधान्य था; किन्तु क्षत्रिय-वर्ग बहुत प्रभावशाली हो उठा था; वह धर्म-कर्म में भी भाग लेता और कभी-कभी ब्राह्मणों की भाँति ही अध्यात्मिक ज्ञान से युक्त होकर, धर्म की व्याख्या तथा धर्म का नेतृत्व करता। स्त्रियों की स्थिति बहुत उच्च थी। गार्गी जैसी स्त्रियाँ शास्त्रार्थ भी करती थीं। वे ब्रह्मचर्य का पालन करतीं। गोमिल गृह्य सूत्र में कहा गया है जब कोई कुमारी विवाह-मण्डप में आती थी तो वह न केवल सुन्दर वस्त्रों को पहने हुई होती वरन् वह यज्ञोपवीत भी धारण किये रहती। इस प्रकार, सर्वसाधारण आर्य किशोरियों का उपनयन होता। आयस्तम्ब सूत्र में भी कहा गया है कि जिस पति ने अन्याय से अपनी पत्नी को त्यागा है, वह पति गधे का चमड़ा ओढ़कर प्रत्येक दिन सात-सात घर भोख माँगे, यह कहते हुए कि उस पुरुष को शिक्षा प्रदान करो, जिसने अपनी पत्नी को त्याग दिया है। उसकी यह भिक्षा वृत्ति ६ मास तक रहती।

प्राचीन वैदिक काल में वैश्य खेतिहर थे। पशुपालक थे। किन्तु, अब वैश्य व्यापारी हो गये। उत्तर वैदिक काल में व्यापारियों का अभ्युदय हुआ। उनका प्रभाव भी खूब बढ़ा। उनमें से जो धनी थे, वे श्रेष्ठिन् (सेठ) कहलाते थे। राज-सभाओं में भी उनका सम्मान होने लगा। पूर्व-भारत के वर्ण-शंकर शासक क्षत्रियों और वैश्यों में बड़ा मेल-जोल हुआ। उधर खेती तथा पशु-पालन का

काम शूद्र करने लगे । शूद्र न केवल खेतिहर और पशु-पालक हुए, वरन् वे रथकार, चर्मकार, लौहकार, मत्स्य-मार ( मछली मार ) भी हुए । संक्षेप में, पेशों और धन्धों के अनुसार, जातियाँ बनने लगीं । शूद्रों का समाज से केवल निष्कासन ( निकाला जाना ) ही नहीं वरन् उनका वध भी किया जा सकता था ।

**धर्म तथा दर्शन**—उत्तर वैदिक काल में, नये देवताओं का प्रादुर्भाव हुआ जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश । जन्म विकास और मृत्यु; उत्पत्ति, पालन और संहार इन तीन प्राकृतिक क्रियाओं के ये तीन सर्वोपरि देवता थे । ब्रह्मा सृष्टि-कर्ता, विष्णु पालन-कर्ता तथा शिव संहार कर्ता हो उठे । इनके अतिरिक्त, प्राचीन देवता भी साथ चलते जा रहे थे । कुछ प्राचीन देवताओं को नये देवताओं के साथ में जोड़ दिया गया, जैसे, वैदिक देवता रुद्र को शिव से । प्राचीन परम्परा को विकसित करते हुये, उसका इस प्रकार निर्वाह किया गया ।

ऋषि-मुनि अरण्य में जाकर तत्त्व-चिन्तन करने लगे । अब उनके मन में यह धारणा जमने लगी कि सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय केवल एक ही तत्त्व की तीन प्रक्रियायें हैं । वह तत्त्व कौन सा है ? कुछ ने कहा वह तत्त्व ईश्वर है । उस ईश्वर की आराधना होनी चाहिए, हमें सम्पूर्ण हृदय से उसे कण-कण में प्रतिबिम्बित देखना चाहिए । ऐसी धारणायें रखने वाले ऋषि-मुनियों तथा उनके प्रभाव के अन्तर्गत अन्य जनों के अतःकरण में यज्ञ तथा कर्म काण्ड आदि का उतना महत्त्व नहीं रहा । किन्तु, साथ ही उन्होंने यज्ञ तथा कर्मकाण्ड का विरोध भी नहीं किया ।

वह स्वतन्त्र चिन्तन का काल था । कुछ लोग ईश्वर को मानते, कुछ न मानते । मतभेद तथा अन्वेषण, व्याख्या और विश्लेषण, अनुभूति और प्रयोग का वह युग था । मतभेद होते हुए भी, बहुत से लोग वैदिक परम्परा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदान करते । किन्तु ऐसे भी चिन्तक थे, जो वैदिक परम्परा ही का विरोध करते थे । इनमें ब्राह्म्य मुख्य थे वे भी अब चुपके-चुपके अपने प्रभाव का विस्तार कर रहे थे ।

इधर, वैदिक साहित्य विशाल तर हो रहा था। एक वेद से ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद जुड़ते जा रहे थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विस्तृत वर्णन था ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ थे ऐतरेय, कौशीतकी और सांख्यायन। यजुर्वेद के दो भाग हो गये, शुक्ल और कृष्ण। दोनों के ब्राह्मण-ग्रन्थ सामने आये—कृष्ण का तैत्तिरीय और शुक्ल का शतपथ। शतपथ ब्राह्मण बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

अरण्यवासी मुनियों ने आरण्यकों और उपनिषदों की रचना की। उपनिषद का अर्थ है पास बैठना (अर्थात् गुरु के समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करना) आरण्यक का अर्थ है वनवासी ऋषियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ। अरण्य अर्थात् वन। वैदिक धर्म का सर्वोच्च विकास उपनिषदों में हुआ। अब हम उपनिषदों के सम्बन्ध में कुछ जान लें। प्रथम है ऐतरेय उपनिषद, जो ऐतरेय ब्राह्मण ही का खण्ड है। दूसरा है ईशोपनिषद। यह यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है। (यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले अन्य उपनिषद् हैं। कठोपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद आदि)। तीसरा—सामवेद के ब्राह्मण-ग्रन्थों से सम्बन्ध रखने वाले उपनिषद हैं केन तथा छान्दोग्य। अथर्ववेद के साथ सम्बन्ध रखने वाले उपनिषद हैं—प्रश्न उपनिषद, मुण्डक उपनिषद, माण्डूक्य उपनिषद। उपनिषदों में ऋषियों की दार्शनिक अनुभूतियाँ हैं। फलतः उनमें परस्पर विरोध-अन्तर्विरोध भी हैं। ऐसी स्थिति में, यह स्वाभाविक ही था, कि बुद्धि के प्रयास द्वारा, ऋषियों के उन मतों के आधार पर विभिन्न दर्शनों का विकास हो। आत्मा क्या है, सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, जगत के कौन से मूल-तत्त्व हैं, पूरे ब्रह्माण्ड का कोई कर्ता है भी या नहीं? क्या जगत् किसी शक्ति के अनुशासन में है अथवा प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है? प्रकृति किसे कहते हैं, उसके गुण-धर्म क्या हैं? आत्मा और परमात्मा का स्वरूप क्या है, उसके अस्तित्व को स्वीकार करना क्या आवश्यक है? इत्यादि अनेकानेक बातों पर, विचार-ऊहापोह, चर्चा वार्ता, मत-भेद, इस प्रकार चलते रहे कि जिससे वे एक दूसरे के पूरक हो उठे। फलतः भारत में नये-नये दर्शन बने।

दर्शन दो प्रकार के हैं। एक वे जो आस्तिक कहलाते हैं। आस्तिक वे जो वेदों में विश्वास रखते हों, भले ही वे ईश्वर पर विश्वास रखें या न रखें। मीमांसा दर्शन के ऋषि जैमिनि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। किन्तु वैदिक परम्परा में उनका विश्वास था। इसलिए वे आस्तिक कहलाये। नास्तिक दर्शन उन्हें कहते हैं जो वेदों में और वैदिक पराम्परा में विश्वास नहीं रखते। जैसे—जैन, बौद्ध, चार्वाक मत। ये नास्तिक दर्शन हैं। आस्तिक दर्शन हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, और वेदान्त। न्याय-दर्शन, वस्तुतः, तर्कशास्त्र है और तर्कशास्त्र पर आधारित जीवन-जगत् की व्याख्या है, सृष्टि और आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण है। न्याय-दर्शन के प्रवर्तक गौतम ऋषि हैं। वैशेषिक दर्शन, न्याय की ही भाँति, किन्तु भिन्न पद्धति से, सृष्टि की व्याख्या करता है, वैसे ही आत्मा की भी। दोनों दर्शनों का भुकाव, बाह्य संसार और सृष्टि अर्थात् भौतिक तत्वों का स्वरूप जानने की ओर अधिक है। इसीलिए, आगे चलकर, दोनों दर्शन लगभग एक हो गये और न्याय-वैशेषिक कहलाये। वैशेषिक मत के प्रतिष्ठापक कणाद मुनि कहे जाते हैं।

**सांख्य**—न्याय, वैशेषिक, सांख्य तीनों सृष्टि को सृष्टि ही मानते हैं, उसको परमात्मा का प्रकट रूप नहीं मानते। अन्तर केवल यह है कि सांख्य ने 'प्रकृति' और 'पुरुष' इन दो श्रेणियों की कल्पना की। दोनों के योग से सारी सृष्टि की उत्पत्ति और विकास हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय के लिए सांख्य ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। सांख्य का 'पुरुष' तत्व ईश्वर नहीं है। वह केवल चेतना का केन्द्र है, और ऐसे केन्द्र अनगिनत हैं।

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल मुनि थे। योग दर्शन भी यह मानता है कि प्रकृति ही से संसार की उत्पत्ति और विकास हुआ। किन्तु, यह दर्शन प्रकृति और पुरुष के साथ-साथ ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार करता है। योगदर्शन के अधिष्ठाता पातञ्जलि हैं। मीमांसा के मूल आचार्य जैमिनि हैं। उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड ही के औचित्य का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया।

**वेदान्त दर्शन**—यह दर्शन 'वेदान्त' इसलिए कहा जाता है कि तत्व-चिन्तन का चरम उत्कर्ष इसी दर्शन में हुआ। वेदान्त दर्शन के प्रणेता हैं

वादरायण व्यास । वेदान्त के अनुसार, जीवन और जगत् सृष्टि और आत्मा में समाया हुआ केवल एक ही तत्व है । वह है ब्रह्म या परमात्मा । सृष्टि या जगत् तथा जीवात्मा आदि इसी परमात्मा का व्यक्त रूप है, पृथक् आंशिक रूप या खण्ड रूप है ।

वादरायण व्यास ने वेदान्त सूत्रों की रचना की । इन सूत्रों के आगे चलकर अनेक भाष्यकार हुए । इन भाष्यकारों ने ( जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि ने ) उन सूत्रों की व्याख्या करके, अपने-अपने अलग-अलग मत प्रतिपादित किये । वेदान्त को अद्वैत मत भी कहते हैं ।

**विदेशों में प्रभाव**—भारतीय तत्व-चिन्तन का प्रभाव योरोप में प्लाटिनस तथा सेण्ट आगस्टाईन जैसे ईसाई चिन्तकों पर पड़ा । यह प्रभाव उन्होंने पश्चिमी एशिया से लिया । पश्चिमी एशिया में हमारे आध्यात्मिक चिन्तन का गहरा प्रभाव था । वहीं, इस्लाम के कुछ साधुओं ने उसे आत्मसात किया । उससे सूफी मत का आविर्भाव हुआ ।

इस आध्यात्मिक तत्व-चिन्तन का दूसरा प्रभाव आधुनिक काल में हुआ । वैदिक साहित्य योरोपीय भाषाओं में अनुवादित होकर जब पश्चिमी मनीषियों द्वारा पढ़ा गया तो वे बहुत प्रभावित हुए । अमरीका का चिन्तक इमर्सन तथा जर्मन दार्शनिक शपेनहावर इसके उदाहरण हैं ।

सूफी मत जब भारत में आया तो उस पर भारतीय तत्व चिन्तन का फिर से प्रभाव हुआ । उसमें योग के सिद्धान्त प्रवेश कर गये ।

इस प्रकार जगत् को प्रभावित करने वाला यह भारतीय तत्व-चिन्तन, उस प्राचीन काल में हमारे यहाँ केवल उच्च वर्ग के ब्राह्मणों तक ही अथवा उनके प्रभाव में रहने वालों तक ही सीमित था । शेष सामान्य भारतीय समाज यज्ञ-याग, कर्म-काण्ड, तंत्र-मंत्र, जादू-टोने में अगाध श्रद्धा रखता था ।

**कर्म सिद्धान्त**—कुछ मूल-भूत विश्वास भारत में प्रचलित हो गये—जैसे कर्म-सिद्धान्त । यह विश्वास था कि जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न जीव-जातियों की देह ग्रहण करता है । उसका पुनर्जन्म होता रहता है । य ह पुनर्जन्म कर्मों के अनुसार होता है । पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म के सिद्धान्त से

जुड़ा हुआ है । इसलिए यह आवश्यक है कि पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए कर्म-बन्धन से मुक्ति मिले । कर्म-बन्धन से मुक्ति का अर्थ होता है संसार के बन्धनों से मुक्त होना क्योंकि जब तक संसार है, कर्म बन्धन भी है । यह मुक्ति या मोक्ष देवताओं की कृपा से, आत्म-साक्षात्कार से, अथवा आत्म-नियंत्रण द्वारा प्राप्त कर सकता है ।

इस सिद्धान्त पर लगभग सारी भारतीय जनता का विश्वास था । फलतः, तप और संसार-परित्याग अर्थात् संन्यास का महत्व बढ़ चला । आत्म-पीड़ा की प्रवृत्ति खूब बढ़ गई । कर्म-सिद्धान्त का प्रभाव इतना व्यापक था कि वैदिक परम्परा का विरोध करने वाले बहुतेरे उसे मानते थे । जैन और बौद्ध धर्म जैसे बेद-विरोधी मत भी इसको स्वीकार करते थे ।

फिर भी, कुछ ऐसे थे, जिन्होंने कर्म सिद्धान्त की कठोर भर्त्सना की । उनमें प्रमुख था—चार्वाक । उसने भौतिकवादी दर्शन का प्रणयन किया ।

**भाषा-परिवर्तन**—उत्तर वैदिक काल में भाषा का परिवर्तन भी होता गया । वैदिक संस्कृत अनेक प्राकृतों में बदलने लगी । ये प्राकृतें विभिन्न प्रदेशों में बोली जातीं । जिन दिनों वैदिक संस्कृत लौकिक संस्कृत होने लगी, प्राकृतों का क्या रूप था । हम नहीं जानते । लौकिक संस्कृत शिष्टों और शिक्षितों की भाषा थी । प्राकृतें—सामान्य जनों की । इन्हीं प्राचीन प्राकृतों में से आगे चलकर—शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृतों का विकास हुआ ।

**महाकाव्य**—प्रत्येक मानव-जाति में अपने-अपने वीरों की कथाएँ, प्राचीन महत्वपूर्ण घटनाएँ, परम्परा द्वारा, पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहानी या किस्से के रूप में चली आती हैं । प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ सूत तथा मागध ( बन्दीगण या भाट ) इन प्राचीन कथाओं को गाया करते थे, या उन्हें गद्य रूप में सुनाया करते थे । इसलिए उन कथाओं को अनुश्रुति कहते हैं । इन अनुश्रुतियों में वास्तविक इतिहास के साथ कल्पना का योग होकर ऐतिहासिक सत्यता को कल्पनात्मक मिथ्या के साथ मिला दिया जाता था । ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व रामायण बना । वाल्मीकि ऋषि द्वारा प्रणीत यह रामायण पिछली

अनुश्रुतियों पर आधारित था। इस ग्रन्थ में कालान्तर में नये-नये अंश और अध्याय जुड़ते चले गये। आज जो वाल्मीकि रामायण हमें प्राप्त होती है वह ईसा के सिर्फ सौ वर्ष पहले तैयार हुई थी। वाल्मीकि रामायण में जो समाज-चित्र उपस्थित किया गया है वह मुख्यतः ईसा के ५०० वर्ष पूर्व का है किन्तु, मुख्य कथा-वस्तु अर्थात् राम के जीवन की घटनाएँ, प्रसंग आदि बहुत प्राचीन हैं।

महाभारत का उपाख्यान भी ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व बना। इस काल तक वह केवल 'भारत' कहलाता था। भारत से महाभारत बनने में, उसे कई सादियाँ लगीं। आज जिस रूप में महाभारत है वह ईसा के दो सौ वर्ष बाद हमारे सामने आया। वैसे महाभारत की ऐतिहासिक घटना रामायण के बाद की है।

मुख्य बात यह है कि वे जातीय महाकाव्य हैं, वे केवल एक ही व्यक्ति की उपज नहीं वरन् विभिन्न कालों के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रणीत हैं। सावधानी से छानबीन करने वाले इतिहासज्ञों को उन ग्रन्थों में भाषा-भेद दिखाई देता है—कोई भाषा प्राचीन संस्कृत तो कोई अर्वाचीन। इन जातीय महाकाव्यों में हमारे आदर्श, संस्कार, आचार विचार, मत-विश्वास, रूढ़ियाँ और परम्पराएँ सुरक्षित हैं।

**भगवद्गीता व भागवत सम्प्रदाय**—गीता-महाभारत ही का अंग है। गीता में कर्मयोग बताया गया है। कर्मयोग का अर्थ है स्वधर्म पालन। भगवद्गीता में सांख्य तथा वेदान्त का प्रभाव परिलक्षित होता है।

मध्ययुग में भक्ति-आन्दोलन के अभ्युदय के बहुत पूर्व, बौद्ध तथा जैनधर्म के भी पहले, हमारे यहाँ कुछ क्षेत्रों में भागवत सम्प्रदाय प्रचलित था। इस साम्प्रदाय का प्रधान-पुरुष वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण थे। इसकी विशेषता यह है कि इसमें यज्ञ तथा कर्मकाण्ड को मानते हुए भी उसको मुख्य नहीं माना गया, ईश्वर-भक्ति तथा स्वधर्म पालन को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया। यह सम्प्रदाय सात्वतों अर्थात् यादवों में प्रचलित था।

भारतीय आर्य संस्कृति के विकास में प्राचीन आर्यों का योगदान भारतीय संस्कृति एक महान् नद के समान है, जो समय के मैदान में प्रवाहित होती है। इस नद में अनेक निर्भरों, नदियों तथा महानदियों ने अपने आपको समर्पित किया और यह नद क्रमशः विशालतर बनता गया। आगे चल कर, कालान्तर में, उसमें शक, यूची, आभीर, हूण, यूनानी, अफगान, तुर्क, अंग्रेज आदि ने अपना-अपना योगदान दिया। यह नद विशालतर होता गया दूसरे शब्दों में, भारतीय संस्कृति की एक विशेषता रही है—सर्वांश्लेषी सर्व-संग्राहक प्रवृत्ति।

हां यह सही है कि किसी नयी मानव-जाति के सम्पर्क के साथ ही साथ उस नयी जाति को अपने से दूर रखने, उससे अलग हटने की, उससे अपने को अछूता रखने की प्रवृत्ति भी कम या अधिक मात्रा में रही आयी। दूसरे शब्दों में, एक ओर पृथक्तावादी पावित्र्यवादी प्रवृत्ति भी रहती। इसका विरोध सर्व संग्राहक संश्लेषणवादी प्रवृत्ति ने किया। किन्तु हम यह देखते हैं कि वस्तुतः, यह नये और पुराने के बीच का संघर्ष था, जिसमें कम या अधिक मात्रा में, नये ही की विजय हुई। समन्वयकारिणी संश्लेष-प्रधान सर्वसंग्राहक प्रवृत्ति ही प्रधान रही। किन्तु, जब-जब पृथक्तावादी अहम्मन्य प्रवृत्ति का उदय हुआ, भारत में भगड़े हुए और अराजकता मच गई। किन्तु अन्ततः सहिष्णुता, सर्वसंग्रहकता, व्यापक भाव-दृष्टि, उदार-हृदय तथा उदार दृष्टिकोण का ही सम्मान हुआ। दूसरे शब्दों में, भारत में संकीर्ण सम्प्रदायवाद और जातिवाद बराबर बने रहे। किन्तु उनके विरोध में, उदार मानव-धर्म हमेशा उठ खड़ा हुआ और अन्ततः जीत भी उसी की हुई, संस्कृति का विकास भी उसी ने किया; किन्तु संकीर्णतावादी प्रवृत्ति कभी भी पूर्णतः पराजित नहीं हुई।

**आध्यात्मिकता**—आर्यों द्वारा प्रदत्त दूसरी विशेषता है “आध्यात्म सम्बन्धी भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है, यह सच है। किन्तु, साथ ही यह भी सही है कि भौतिकवाद या संसारोन्मुख कर्तव्य-भावना की भी हमारे यहाँ कभी कमी नहीं रही। वास्तविक भौतिकवाद प्राचीन काल में भी था। किन्तु वह प्रभावकारी



नहीं हुआ। आधुनिक काल में जब विज्ञान-युग आरम्भ हुआ तो आध्यात्मिक प्रवृत्ति के स्थान पर। भौतिक-सामाजिक आदर्श ही सामने आये तथा मानव का प्रधान लक्ष्य मोक्ष न रह कर, संसार, समाज, मानवता और जगत् के कल्याण का आदर्श ही प्रधान हो उठा। हमारी प्राचीन तथा मध्ययुगीन आध्यात्मिकता हमें 'मोक्ष' ही का लक्ष्य प्रदान करती थी।

**मत-विश्वास**—महत्त्व की बात यह है कि आर्यों ने पुनर्जन्म और कर्म-बन्धन का सिद्धान्त सामने रखा। भले ही जैन और बौद्ध, वैदिक परम्परा को न मानें, वे पुनर्जन्म और कर्म-बन्धन को मानते ही थे। ये मत-विश्वास आज तक चले आये हैं। भारत के केवल कुछ विज्ञानवादी बुद्धि-जीवी उसे नहीं मानते। प्राचीनकाल में, पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त को न चार्वाक-सम्प्रदाय वाले मानते थे, न आजीवक सम्प्रदाय वाले।

**जाति-व्यवस्था**—प्राचीन आर्यों ने जिस जाति-व्यवस्था का विकास किया, वह अनेक संशोधन-परिवर्धन के साथ, आज भी उपस्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन आर्यों ने जाति-व्यवस्था उत्पन्न करके उसके द्वारा भारतीय समाज में आर्येतरों को स्थान देकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार, हमने बाहर से आये हुए अनेकानेक आर्येतर जातियों को हिन्दू बना लिया। फलतः, हिन्दू समाज और संस्कृति दृढ़ हुई और बाह्य आक्रमणों से उनकी रक्षा हो सकी। कुछ विद्वानों का कथन है कि इसके फलस्वरूप आज भी जगत् में हिन्दू-धर्म सुरक्षित है।

किन्तु सच तो यह है कि इस जाति-व्यवस्था के भीतर, ऊँच-नीच का भेद था। मानव-समानता के सिद्धान्त का यह ज्वलन्त विरोध था। यही कारण है कि मध्ययुग के आरम्भ के बहुत पहले से, बहुत लोगों ने जाति-व्यवस्था का (वर्णाश्रम-धर्म का) विरोध किया।

बौद्ध-धर्म ने सबसे पहले जाति-व्यवस्था को गहरी चोट पहुँचाई। बौद्ध-धर्म के ह्रास के बाद फिर से पौराणिक-धर्म का सहारा पाकर वर्णाश्रम-धर्म उठ खड़ा

हुआ। किन्तु मध्ययुग साधु-सन्तों ने, विशेष कर कबीर जैसे निगुणवादियों ने, जाति-व्यवस्था का उग्र विरोध किया। भक्ति-आन्दोलन में शूद्र समझी जाने वाली जातियों ने बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने अनेकानेक साधु-सन्त उत्पन्न किये। धर्म को मानव-धर्म बनाया। इनके स्वर में स्वर मिलाकर, भावुक उच्च वर्णीय साधुओं ने भी कहा जैसे चण्डीदास ने—

“गुनह मानुष भाई  
शाबार उपरे मानुष सत्य  
ताहार उपरे नाई”

हे मनुष्यो, मुनो !! मनुष्य सत्य सर्वोच्च सत्य है, उससे उच्चतर कोई भी सत्य नहीं है।

आज के जमाने में जातिवाद उग्र-रूप धारण कर चुका है। मध्ययुग में उसका रूप धार्मिक एवं सामाजिक था। अब उसने सामाजिक तथा राजनैतिक रूप धारण किया है।

फिर भी आधुनिक युग के प्रसार के साथ जातीय बन्धन शिथिल भी होते जा रहे हैं। विज्ञानवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप, मानव-साम्य का दृष्टिकोण भी प्रधान हो उठा है। साथ ही सार्वजनिक संस्थाओं में तथा मन्दिरों में अस्पृश्य समझा जाने वाला दलित वर्ग भी आ-जा सकता है। वर्तमान उद्योग-प्रधान सभ्यता का ज्यों-ज्यों विकास होता जायेगा और उसका प्रभाव घनीभूत होता जायेगा, त्यों-त्यों जाति-व्यवस्था की संकुचित दीवारें भी गिरती जायेंगी, यह एक निर्विवाद तथ्य है।

## प्रश्न

१. भारतीय संस्कृति को आर्यों की देन के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

## आर्य-सभ्यता का आरम्भ

२. उत्तर वैदिक कालीन जाति-व्यवस्था पर प्रकाश डालिये ।
३. तत्कालीन राज्य-व्यवस्था का विवरण दीजिये ।
४. उस समय के धर्म के स्वरूप पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
५. तत्कालीन नारी-जीवन के बारे में आप क्या जानते हैं ?
६. तत्कालीन सामाजिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।
७. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये :—

- |                    |                 |
|--------------------|-----------------|
| (१) महाभारत,       | (२) उपनिषद्,    |
| (३) न्याय-वैशेषिक, | (४) नास्तिक मत, |
| (५) ब्राह्म्य,     | (६) एकराट् ।    |
-

## जैन धर्म बौद्ध-धर्म । ४

[ ईसा-पूर्व छठी सदी विश्व की असाधारण शताब्दी है । उस काल-खण्ड में सभ्यता के अनेक केन्द्रों में ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने अपने देश के धार्मिक, दार्शनिक विश्वासों और विचारों को जबर्दस्त धक्का दिया और उथल-पुथल मचा दी । यूनान में हिरैक्लिट्स, ईरान में ज़रतुष्ट्र, चीन में कनफ़्युशियस, भारत में वर्धमान महावीर और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने अपने-अपने काल के समाजों को विचलित कर दिया, उन्हें सोचने के लिए बाध्य कर दिया, और इस प्रकार जन, जागरण उत्पन्न कर उन्होंने पूर्वतर समाज-व्यवस्था में सुधार करते हुए, नई भाव-पूर्ण जीवन-दृष्टि प्रदान की । इस जीवन की दृष्टि का प्रभाव देशकालातीत हो गया । यद्यपि धर्म रूप में, बौद्ध मत भारत से लगभग उड़ गया, किन्तु महान् सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में, आज भी वह हमारी विचार-पद्धति और भाव पद्धति में विराजमान है । उसी प्रकार जैनधर्म यद्यपि अनुयायियों की संख्या की दृष्टि से अल्प है, किन्तु भारतीय दर्शन तथा कला में उसका योगदान कैसे भुलाया जा सकता है । ]

**जैन-धर्म**—ईसा पूर्व सातवीं सदी में, जो उपनिषद् काल के नाम से जानी जाती है, ऐसे बहुत से लोग थे, जो कर्मकाण्ड-प्रधान वैदिक धर्म से सन्तुष्ट नहीं थे । उपनिषद्-कर्ता ऋषियों ने भी कर्मकाण्ड को महत्त्व नहीं दिया । किन्तु, उन्होंने खुल कर उसका विरोध भी नहीं किया । साथ ही; साधारण जन-समाज में उनके सूक्ष्म चिन्तन के महान् निष्कर्षों का प्रचार भी नहीं था । वे समाज

के उच्चतम स्तर पर थे और अपनी इस उच्च स्थिति के फलस्वरूप ही सामान्य जन-समाज से सम्पर्क-रहित और पृथक् थे ।

ब्राह्मण—इस विशेष धार्मिक सामाजिक स्थिति में, जबकि जनता अन्ध-विश्वासों में डूबी हुई थी और पुरोहितवर्ग कर्म-काण्ड तथा रूढ़ियों के पालन को ही धर्म समझता था, ऐसे लोग आये, जिन्होंने ब्राह्मण-प्रभुत्व-सम्पन्न व्यवस्था ही को चुनौती दी ।

यह चुनौती उन वर्ण-संकर जातियों के कुछ विचारकों से आई, जिन्हें आर्यजन अनादर की दृष्टि से देखते थे । इन वर्ण-संकर जातियों के प्रति ब्राह्मण का भाव तिरस्कारपूर्ण होने से, वह असन्तोष समाज के बहुत से लोगों में घर कर गया था कि जिस असन्तोष को हम 'उग्र विचार' का जनक कह सकते हैं । ब्राह्मण-गण उग्र-विचारों का प्रतिनिधित्व करने लगे । इस वर्ण-संकर जातियों के प्रति आर्यों का अनादर-भाव होने के कारण ही, ब्राह्मणों की अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा तथा विचार-धारा चुपके-चुपके, हलके-हलके समाज में फैलती रही ।

यह विचार-धारा क्या थी ? वैदिक परम्परा तथा यज्ञ-याग कर्म काण्ड में कुछ नहीं घरा है । पुरोहित-वर्ग, लोभवश; जनता को भुलावे में रखने के लिए, कर्मकाण्ड को महत्त्व देता है । सामाजिक ऊँच-नीच मानव-निर्मित है । कर्म ही से मनुष्य ऊँचा या नीचा होता है । जाति-व्यवस्था और वर्णाश्रम-व्यवस्था निरर्थक है । उसे शिथिल होना चाहिए या टूट जाना चाहिए । धर्म का सच्चा स्वरूप है आत्म-नियंत्रण और सद्भावना, इन्द्रियों का दमन और सदाचार, करुणा तथा शील, प्रेम तथा पर-दुःख-कातरता । धर्म का सच्चा स्वरूप मनुष्य के नैतिक चरित्र में है, उदात्त व्यक्तित्व में है । बुद्धि की स्वतन्त्र क्रिया और मानवता के कल्याण की कामना ही से धर्म का स्वरूप बनता है ।

ये विचार आज हमें केवल सुधारवादी प्रतीत होते हैं । किन्तु तत्कालीन पुरोहितवादी धर्म के लिए, ये विचार समाज में उथल-पुथल मचा देने वाले थे, उसके लिए, वे क्रान्तिकारी थे ।

ये विचार उपनिषद्-काल ही से, ब्राह्मण-धर्म के बाहर ब्राह्मण-समुदायों में पनप रहे थे। उनका प्रचार वर्ण-संकर जातियों में विशेष रूप से था।

उपनिषद्-काल के अनन्तर पश्चिम के आर्यों का प्रभाव जाता रहा और पूर्व के (विशेषकर मगध के) वर्ण-संकर क्षत्रियों का प्रभाव बढ़ता गया। इन वर्ण-संकर क्षत्रियों के राजनैतिक प्रभुत्व के विकास के साथ-ही-साथ ब्राह्मण भी अपना प्रभाव बढ़ाने लगे।

ब्राह्मण लोग त्याग और करुणा को, इन्द्रिय-दमन और आत्म-शुद्धि को, सदाचार और प्रेम को धर्म का मुख्य लक्षण मानते थे। वे अपने अर्हतों (सन्तों) के मार्ग का अनुसरण करते, तथा उनके चैत्यों (समाधियों) को पूजते। तपस्या, संयम और सदाचार उनके मुख्य सिद्धान्त थे।

उधर आर्य-जन अपने को शुद्ध रक्तवान् समझकर मगध तथा अन्य पूर्वीय क्षेत्रों के क्षत्रियों को, 'नय-वर्जित', 'शूद्र-प्राय' तथा 'शूद्र' समझते थे। ब्राह्मण स्वयं वर्ण-संकर थे। उन्हें मगध तथा पूर्व के अन्य क्षेत्रों के महत्वाकांक्षी राज्यों में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

**पार्श्वनाथ :—** ईसा पूर्व सन् ७५० के लगभग, पार्श्वनाथ नामक एक महान् अर्हत अथवा तीर्थशंकर हुए। उन्होंने कहा कि अहिंसा सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह ही सच्चा धर्म है। उन्होंने अर्हतों की उज्ज्वल परम्परा के अनुसार जाति व्यवस्था तथा कर्मकाण्ड का विरोध किया। अर्हतों की परम्परा में, पार्श्व तेईसवें अर्हत या तीर्थङ्कर थे। उत्तर बिहार के गणराज्यों में, वृजियों का संघ-राज्य था। उस राज्य में क्षात्रिक कुल की प्रधानता थी। उस कुल का मुख्य अधिपति सिद्धार्थ था। उसने और उसकी पत्नी त्रिशला ने पार्श्व का उपदेश ग्रहण किया। उस कुल में लगभग ढाई सौ वर्ष बाद वर्धमान महावीर का जन्म हुआ। उनका जन्म-काल ५६६ ई० पू० माना जाता है।

**वर्धमान महावीर —** अर्हतों या तीर्थङ्करों की उज्ज्वल परम्परा में भगवान् महावीर अंतिम तीर्थङ्कर माने जाते हैं। ये महापुरुष तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। ये जब तीस वर्ष के हुए तो उन्होंने सत्य की खोज में अपना घर

छोड़ दिया । उन्होंने प्रव्रज्या ( संन्यास ) ग्रहण कर ली । बारह वर्ष के कठोर तप के उपरान्त, उन्हें 'कैवल्य' ( सत्य-बोध ) प्राप्त हुआ । तब से ये अर्हंत (पूज्य) जिन ( विजेता, इन्द्रिय जित् ) और निर्ग्रन्थ ( बन्धनहीन ) कहलाये । इसके बाद के तीस वर्ष, उन्होंने भ्रमण में व्यतीत किये । वे देश भर में अपने मत का प्रचार करते रहे । उन्होंने मगध के सम्राट् बिम्बिसार और उनके पुत्र



वर्धमान महावीर

अजातशत्रु से कई बार भेंट की । ये राजा उनके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे । ई० पू० ५२७ में पावापुरी में, जो पटने जिले में एक गाँव है, उनका देहान्त हो गया । महावीर जिन कहलाते थे, इसीलिये उनके मत का नाम जैन हुआ । अनुयायी भी जैन कहलाये । उनके पूर्व के तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने धर्म के चार

मुख्य तत्व कहे थे । वर्धमान महावीर ने पाँच बताये । वे इस प्रकार हैं—सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य को महावीर ने जोड़ा ।

जैन मत तपस्या-प्रधान मत है, उसमें अहिंसा प्रेम तथा सदाचार पर ही जोर है । जैन धर्म अनीश्वरवादी मत है, उसमें ईश्वर को कोई स्थान नहीं । वे केवल 'सिद्ध' पुरुष के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हैं । सिद्ध वह, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो और सर्वोच्च आध्यात्मिक दशा प्राप्त कर ली हो ।

**धर्म-प्रसार**—वर्धमान महावीर ने अपने जीवन-काल में ही धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए संघ स्थापित किया । उनकी मृत्यु के उपरान्त, संघ के नेताओं या प्रमुखों में संभूत विजय और भद्रबाहु जैसे महान् साधु हुए, जिन्होंने इस मत को देश के कोने-कोने में पहुँचाया । ईसा पूर्व चौथी सदी के अन्त में, भद्रबाहु के नेतृत्व में जैन साधुओं का एक दल, दक्षिण भारत में धर्म-प्रचार के लिए गया । उसने मैसूर के अन्तर्गत श्रवण बेलगोला में अपना केन्द्र बना कर वहाँ से जैन मत का प्रचार किया । भद्रबाहु के नेतृत्व में काम करने वाले जैन साधु तथा मगध के रहने वाले जैन साधु इन दो के बीच में क्रमशः खाई बढ़ती गई, और सिद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद होते गये । दक्षिण के जैन मतावलम्बी दिगम्बर सम्प्रदाय हो गये और मगध के श्वेताम्बर सम्प्रदाय ।

जैन मत को राजाश्रय भी खूब मिला । भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे आश्रय प्रदान किया । मगध के नन्द वंश के कई राजा जैन थे । कलिंग (उड़ीसा) के विख्यात पराक्रमी नरेश खारवेल ने तो जैन धर्म ही स्वीकार कर लिया । दक्षिण में ईसा की पाँचवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक अनेक राजवंशों ने इसे आश्रय दिया, जिनमें चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग और कदम्ब प्रमुख हैं ।

ईसा की बारहवीं सदी में गुजरात में जैन धर्म का खूब ही उत्कर्ष हुआ । अनहिलवाड़े के महान् चालुक्य नरेश सिद्धराज जैन थे । उनके पुत्र कुमारपाल जैन धर्म के महान् संरक्षक थे । मुसलमानों के जमाने में, विशेष कर अकबर के काल में, जैन धर्म राजपूताने में अग्रसर हुआ । किन्तु उसके अनन्तर जैन धर्म का ह्रास होने लगा । आज भारत में जैनियों की संख्या तेरह लाख से कुछ



ही अधिक है। वे भी, राजस्थान; मालवा, गुजरात, मध्यभारत और दक्षिण के कुछ जिलों में ही अधिकतर पाये जाते हैं।

**जैन धर्म का हास**—एक समय में अत्यन्त प्रभावशाली जैन धर्म क्रमशः हास ग्रस्त होने लगा। इसका एक कारण भक्ति-प्रधान पौराणिक धर्म का अभ्युत्थान था, जिसने बौद्ध धर्म का भी भारत-भूमि से लोप कर दिया। दूसरे जैन धर्म में भी जाति-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो गया था और राजाश्रय भी लुप्त हो चुका था।

जैनियों के पास विशाल तथा समृद्धिशाली साहित्य है। उनका तर्कशास्त्र प्रचण्ड बुद्धिमत्ता का द्योतक है। उनका दार्शनिक साहित्य विविध और व्यापक है। धार्मिक प्रबन्ध-काव्य, आख्यान तथा पुराण भी उनके पास हैं। उनके बड़े मन्दिरों में ग्रन्थालय होते हैं, जिनमें मूल्यवान् प्राचीन पोथियाँ आज भी पाई जाती हैं।

वर्धमान महावीर ने, जन-साधारण के ज्ञान के लिए, अर्ध-मागधी में अपने उपदेश दिये थे। जैन साधुओं ने अर्ध-मागधी, शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृतों और अपभ्रंशों में अपनी रचना की।

जैनों ने स्थापत्य-कला तथा मूर्तिकला का विशेष उत्कर्ष किया। उन्होंने अपने सन्तों के सम्मान में स्तूप बनाये। मथुरा की जैन मूर्तियाँ अत्यन्त मनोहर हैं। मैसूर में श्रवण बेल गोला तथा कर्कल में बाहुबलिन की विशाल प्रतिमा (वह गोमटेश्वर के नाम से विख्यात है) जैन कला के अद्भुत उदाहरण हैं। हमारे मध्यप्रदेश में ही, जैसे ग्वालियर तथा बड़वानी में विशालाकार जैन मूर्तियाँ पाई जाती हैं। जैनियों ने चट्टानों को काट कर मन्दिर बनाये। उड़ीसा में हाथीगुम्फा में उसके सुन्दर नमूने हैं। इसके अलावा आबू पहाड़ पर ग्यारहवीं सदी के जो जैन मन्दिर बने हैं, वे भारतीय कला-शिल्प के अद्भुत उदाहरण हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में जैन-कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। इस कला के नमूने भारत में विभिन्न स्थानों पर पाये जाते हैं। उनकी कला में सादगी है, हिन्दू-कला जैसी चमक-दमक नहीं।

## महात्मा गौतम बुद्ध

नेपाल की तराई में शाक्य जाति का एक गण-राज्य था। उसके प्रमुख थे—राजा शुद्धोदन। उनकी राजधानी थी कपिलवस्तु। उससे कुछ ही मील दूर एक ग्राम था—लुम्बिनी। वहाँ ईसा पूर्व ५६६ में सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही एक घटना और हुई। माता माया देवी—पुत्र को जगत् में लाकर—स्वयं यह जगत् छोड़कर चली गई—जन्म और मृत्यु—ये दो घटनाएँ एक साथ। प्रसव-पीड़ा और मृत्यु-कष्ट दोनों की प्रक्रियाएँ—समानान्तर !!

निःसन्देह इस घटना ने, जाने-अनजाने, सिद्धार्थ के मन को प्रभावित किया। साथ ही, उनका मन भीतर ही भीतर घुलने लगा। हाँ, यह सही है कि उन्हें जीवन की उस प्रथम घटना की याद नहीं रही होगी। फिर भी, मन भीतर ही भीतर उदासी के रंग में घुलता जाता था। वैसे कारण कुछ भी नहीं था। हाँ, यह अवश्य होता था कि वे नगर में घूमते हुए किसी जर्जर वृद्ध को देख लेते या किसी शव को अथवा अपने राज-उद्यान में किसी आहत पक्षी को तो दुःख के इस दर्शन-मात्र से उनका हृदय पसीज जाता, और वह दुःख की समस्या पर सोचने लगते। मननशीलता, चिन्तनशीलता उनके जीवन की स्थायी वृत्ति बन गई। अतः उसके कारण वे नव-यौवन में भी गम्भीर हो गये।

आयु-वृद्धि के साथ ही, उन्हें अपने जीवन की प्रथम घटना मालूम हो गई होगी। उससे उन्हें अपार दुःख हुआ होगा। वे अपनी जन्मदात्री की कल्पना करते रहे होंगे। उनकी आँखों में आँसू छनछला जाते रहे होंगे। कोई उनसे पूछता होगा कि भाई मेरे, उदास क्यों हो। तो उत्तर मिलता होगा 'कुछ नहीं, कुछ नहीं !!' और एक उदास मुसकान सिद्धार्थ के होठों पर सिहर जाती होगी। बाहरी दुनिया में दुःखी जनों को देखकर, उनका संवेदन-शील मन चुपचाप धाड़ मारकर रोता होगा और इसका किसी को पता भी न चलता होगा।

उदास गम्भीर मुख मुद्रा में जब वे बात करते होंगे, तब उनके प्रेमी जनों का हृदय भी दुःख जाता होगा; साथ ही सिद्धार्थ और उनके बीच अतिशय

घनिष्ठता के बावजूद, अपरिचय की दूरी बढ़ जाती होगी। वे नहीं जान पाते होंगे कि आखिर यह नवयुवक सिद्धार्थ उदास क्यों रहता है। अतिशय प्रेम और अपरिचय के कारण उन प्रेमी जनों ने—पिता ने, सम्बन्धियों ने, सहचरों ने उनके आस-पास विलास के उपकरण जुटाये। अन्ततः यशोधरा नामक एक रूपवती राजकन्या से उनका विवाह भी हो गया। घर के लोग नहीं जानते थे कि सिद्धार्थ किस दुनिया में रहते हैं। उनकी विरक्ति को हटाने के लिए उन्होंने पत्नी का प्रबन्ध कर डाला।

किन्तु सिद्धार्थ वस्तुतः विरक्त नहीं थे। उनके हृदय में पिता के प्रति, पत्नी के प्रति, बन्धुओं और सहचरों के प्रति मानव-मात्र के प्रति-प्रेम-भाव था। वे मानव में अनुरक्त थे। अपने हृदय की अत्यधिक संवेदनशीलता के कारण, वे जीवन की जरा सी भी असंगति को, थोड़े से भी वैषम्य को देख लेते थे। उन्हें दुःख की समस्या का निदान करना था, जीवन की विभिन्न असंगतियों विषमताओं को दूर करने का उपाय खोजना था। उनका प्रेम-पूर्ण करुणा-कातर अन्तःकरण दार्शनिक हो उठा। बौद्ध धर्म का वास्तविक स्रोत सिद्धार्थ का हृदय है।

ऐसी स्थिति में वे घर पर नहीं बैठ सकते थे। घर की चहारदीवारी में मौज करने वाले वे नहीं थे। उनकी जिन्दगी इस मौज के लिए नहीं थी। उन्हें तो दुःख के निराकरण का ऐसा स्थायी निदान चाहिए था जो सारी असंगतियों, सारी विषमताओं को हटाकर मनुष्य के हृदय को प्रेम और शान्ति से परिपूर्ण कर सके। यशोधरा छूटने ही वाली थी। यशोधरा के पास बैठ कर भी, वे उससे कितनी दूर थे! एक रात उन्होंने सोती हुई वधू और राहुल बालक को अन्तिम प्रेमभरी दृष्टि से देखकर घर को छोड़ दिया। यह सिद्धार्थ का महा-भिनिष्क्रमण कहलाता है।

यह आवश्यक था कि तत्कालीन जितने भी मार्ग (मत या धर्म) हैं, उन्हें देख लिया जाय कि वे कहाँ तक उपयोगी हैं। गृह-त्याग के अनन्तर संन्यास ग्रहण करके, सिद्धार्थ ने दो ब्राह्मण धर्माचार्यों के आश्रम में अध्ययन किया।

साथ ही, वे भ्रमण करते रहे, सत्संग करते रहे। जीवन का विस्तृत अनुभव लेते रहे। किन्तु, उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, अपनी समस्या का निदान नहीं मिला। उन्होंने सोचा, संभव है कठोर तपस्या के द्वारा कुछ प्राप्त हो।

उन दिनों ब्राह्मणों द्वारा तथा ऋषियों द्वारा भी तपस्या को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। इसलिए, उन्होंने सोचा कि एक बार कठोर तपस्या का प्रयोग भी कर लिया जाय। उन्होंने दृढ़ होकर आस्थापूर्वक (विहार में) उरुवेला नामक स्थान के सघन वन में कठोर तप किया और अपने शरीर को तरह-तरह की यातनाएँ दीं।

किन्तु तपस्या पूरी होने पर भी कुछ भी हाथ नहीं लगा। समस्या ज्यों की त्यों रही। वे बौद्ध गया गये। वहाँ एक बार उन्होंने निरंजना नदी में स्नान किया। उनकी धुन लग गई। वे एक पीपल के नीचे, योंही, तृण के आसन पर बैठ गये और मगन हो गये, खो गये। उनके हृदय में सहसा ज्ञान का प्रकाश हुआ, और वे उस प्रकाश में स्थिर हो गये, उसमें डूब गये। यहीं वे 'बुद्ध' हो गये अर्थात् उन्हें बोध प्राप्त हो गया, ज्ञान मिल गया। तभी से वे तथागत या बुद्ध कहलाये। तब उनकी आयु पैंतीस वर्ष की थी।

इसके बाद वे बनारस गये। वहाँ सारनाथ के हिरण्यकुञ्ज में उन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया। वहाँ उन्हें अपने प्रथम पाँच शिष्य मिले। अपने अगले पैंतालीस वर्ष उन्होंने ज्ञान के प्रसार-प्रचार में व्यतीत किये। वे धनी और गरीब, ब्राह्मण और शूद्र, राजा और रंक, स्त्री और पुरुष—सब को उपदेश देते, सत्य-ज्ञान के योग्य सब को समझते। मगध का राजा बिम्बसार और उसका पुत्र अजातशत्रु तथा कौशल देश का नृपति प्रसेनजित उनके शिष्य बन गये। सत्य-ज्ञान के प्रचार के लिए, उन्होंने एक संघ स्थापित किया। वे अनवरत परिश्रम करते, धर्म का प्रचार करते, वार्तालाप करते, शंका-समाधान करते और सीधा-सरल जीवन व्यतीत करते। इस प्रकार सतत् कार्य करते हुए वे अस्सी वर्ष की आयु में ई० पू० ४०६ में कुशीनगर में (उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले के अन्तर्गत वर्तमान कसिया में) दिवंगत हुए। वैशाख पूर्णिमा के दिन

गौतम बुद्ध ने प्राण त्याग किया, उसी तिथि को अस्सी वर्ष पूर्व उनका जन्म हुआ था ।

**बौद्ध-धर्म**—गौतम बुद्ध ने सबसे बड़ा काम यह किया कि उन्होंने धर्म को मानव-धर्म बना डाला, हृदय के उदार तथा कोमल गुण उसमें पैदा कर दिये, उसे जीवन के अत्यधिक सन्निकट कर दिया । प्रेम और करुणा, उदारता और ज्ञान, विवेक और पर-दुःखकातरता की जो उदात्त प्रेरणाएँ हैं, उनसे गतिमान होकर जब मनुष्य मन से, वचन से और कर्म से सात्विक जीवन व्यतीत करने लगता है तब वह आप ही आप बौद्ध धर्म के आदर्श-पथ पर चलने लगता है—भले ही वह उसे माने या न माने ।

महात्मा गौतम अपने धर्म को 'मध्यम मार्ग' कहते । वे कहते कि अपनी आत्मा और शरीर को व्यर्थ ही मारते और कष्ट देते रहना अनुचित है, आत्म-हनन, आत्म-पीड़न गलत है । साथ ही, विलास और भोग में पड़े रहकर, आसक्तिपूर्ण, आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना भी अनुचित है । यदि मनुष्य का ध्यान नित्य सत्य की ओर ही रहे तो वे दोनों प्रकार के अतिरेक उसके हाथ से नहीं होंगे ।

जैन-धर्म तपस्या-प्रधान, कठोर इन्द्रिय-दमन-प्रधान धर्म है । इसके विपरीत, बौद्ध-धर्म में तापसिक कठोरता नहीं है । वह अधिक स्वाभाविक, सात्विक जीवन व्यतीत करने का आदेश देता है । मध्यम मार्ग की यही मनुष्यता है । बौद्ध-धर्म केवल व्यवहारवादी नहीं है, क्योंकि उसमें आत्मा के विवेक और भावुक पर-दुःख-कातर प्रेम को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । विवेक के ही आधार पर बुद्ध ने किन्हीं विशेष परिस्थितियों में मांस-भक्षण की भी अनुमति दी थी ।

**कर्मकाण्ड-विरोध**—ब्राह्मणों की ही भाँति, गौतम बुद्ध ने कर्मकाण्ड-प्रधान ब्राह्मण-धर्म पर, उसकी जाति-व्यवस्था और वर्णाश्रम-धर्म पर कठोर आघात किये । बौद्ध-धर्म में ईश्वर को कोई स्थान नहीं है । कई जगह ईश्वर की सत्ता का निषेध किया गया है । इस अर्थ में, वह अनीश्वरवादी है । किन्तु

कई स्थानों पर बात इस तरह कही गई मानों ईश्वर हो भी सकता है (लेकिन उसके बाद में हमें नहीं मालूम) उसमें हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, न होना चाहिए। गौतम बुद्ध तथा वर्धमान महावीर दोनों कर्म सिद्धान्त को मानते थे। उन्होंने धर्म को, नैतिकता से और नैतिकता को हृदय में बह उठने वाले प्रेम तथा करुणा के रस से सम्बद्ध कर दिया। पर-दुख-कातरता और मानव-कल्याण ही मानव धर्म है।

दूसरी महत्त्व की बात यह प्रस्तुत हुई कि महापुरुषों का प्रत्यक्ष जीवन-उदाहरण अधिक प्रभावशाली होता है, इसीलिये आगे चल कर बौद्ध-धर्म में गौतम बुद्ध की पूजा की जाने लगी। इस प्रकार भक्ति-भाव का उदय हुआ। क्रमशः बौद्धों ने ब्राह्मणों के विश्वास के अनुसार अवतारवाद का भी सिद्धान्त मान लिया। बुद्ध अब ईश्वरवत् हो गये। पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करने लगे। तत्कालीन भक्ति-भाव की पूर्ति उसी तरह हो सकती थी। आगे चलकर, महा-यान सम्प्रदाय निकला। उसमें गौतम बुद्ध के अवतारों—बोधिसत्त्वों की कल्पना की गई और उनकी उपासना की जाने लगी। महायान के विरुद्ध प्राचीनतर हीनयान ने आदिम बौद्ध धर्म को कायम रखना चाहा।

क्रमशः पौराणिक धर्म का अभ्युदय होता गया; और एक समय वह आया जब बौद्ध धर्म अपना देश खाली करके विदेशों में जा बसा।

### प्रश्न

१. वात्स्य कौन थे ? उनकी परम्परा पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
२. भारतीय धर्मों के विकास में वर्ण-शंकर जातियों ने क्या योग दिया ?
३. 'पार्श्वनाथ' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
४. महावीर वर्धमान के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिये।
५. वर्धमान के जीवन के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?
६. मध्यम मार्ग किसे कहते हैं ?
७. गौतम-बुद्ध की प्रेरणाओं पर एक निबन्ध लिखिये।
८. बौद्ध धर्म के समुदायों पर प्रकाश डालिये।

## अशोक की धर्म-विजय । ५

[ अशोक का नाम विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है । दुनिया में कौन ऐसा सुशिक्षित व्यक्ति है, जो अशोक का नाम नहीं जानता ? हमारे राष्ट्र-ध्वज में जो चक्र बना है, राजकीय मुहर-मुहर पर जो सिंहाकृति है, वह अशोक की देन है ! आज भी विश्व भर के शान्ति-प्रिय स्वप्न-दृष्टा, जिन्होंने मानव की उन्नति-क्षमता और विकास-सामर्थ्य पर अपना विश्वास नहीं खोया है, वे सब अशोक का नाम आते ही उसके प्रति आदर-भाव से भर उठते हैं । ऐसा क्यों है ? आखिर क्यों !! ]

अशोक भारत में आज से लगभग दो हजार दो सौ इक्कीस साल पहले राज्य करता था । हम नहीं जानते कि उसका बाल्यकाल कैसे बीता और उसका मानसिक विकास कैसे हुआ । इतना भर मालूम है कि कथा के अनुसार उसने तक्षशिला का विद्रोह दबाया था, दूसरे यह कि वह अपने पिता सम्राट् बिन्दुसार की ओर से मालवे में राज्यपाल ( गवर्नर ) नियुक्त किया गया था । संभवतः उसकी राजधानी उज्जैन थी, या शायद विदिशा ( आजकल का भेलसा ) । उसके सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि राज-सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसने अपने भाइयों का वध किया । किन्तु इस बात को सब इतिहासकार नहीं मानते । बहरहाल यह सही है कि वह ई० पू० सन् २७३ में सम्राट् घोषित किया गया और ई० पू० सन् २६६ में उसका राज्याभिषेक हुआ ।

सम्राट होने के बाद अशोक अधिकांश समय अश्वशाला और उद्यानों में बिताता। वह विश्वास-प्रिय था। खाने-पीने का शौकीन था। मोर का गोشت उसे खास तौर से पसन्द था। अपना कुछ समय वह शिकार में भी बिताता।

इस प्रकार उसके राजत्व काल के प्रथम आठ वर्ष सुख और शान्ति से व्यतीत हुए कि इतने में कलिंग-विद्रोह का समाचार आया।

अशोक ने भयानक संग्राम किया और उसे कुचल दिया। अशोक स्वयं कहता है—“इस युद्ध में एक लाख लोग मारे गये, इससे कई गुनी अधिक संख्या में लोग घायल हुए और डेढ़ लाख लोगों को देश के बाहर निकाल दिया गया।” यह घटना ई० पू० सन् २६१ की है।

निःसन्देह कलिंग के सैनिकों ने जल्दी ही घुटने नहीं टेके होंगे। उन्होंने लम्बे अर्से तक जम कर मोर्चा लिया होगा। उन्होंने प्रण किया होगा कि मारेंगे या मरेगे। किन्तु, उनमें इतना मनोबल, कैसे पैदा हुआ, उनमें इतनी भयानक विद्रोहाग्नि क्यों भड़की?

हम इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। इतनी भयानक विद्रोहाग्नि का एक ही कारण हो सकता है। और वह है—राजकीय अत्याचार। नहीं तो कोई कारण नहीं है कि विद्रोही जल्द आत्म-समर्पण न कर दें? संभव है कि निरंकुश राजतंत्र के भीतर, राजा की व्यक्तिगत कार्य-दक्षता के अभाव में, व्यक्तिगत देख-रेख और जाँच-पड़ताल के अभाव में, सर्वाधिकार-प्राप्त राज-कर्मचारियों ने कलिंग की प्रजा पर अत्याचार किये हों अथवा उन्हें अत्याचार-पूर्ण नियमों के अधीन कर रखा हो। संभव है कि बिन्दुसार के समय से ही, प्रशासन-व्यवस्था अधिक शिथिल और अधिक अत्याचारी हो गई हो और नवीन राजा अशोक ने भी उस बढ़ती हुई शिथिलता और कठोरता की ओर ध्यान न दिया हो, प्रजा की आवाज न सुनी हो।

संक्षेप में, कलिंग-युद्ध, युद्ध नहीं था, वह नर-मेघ था, व्यापक मानव-संहार था। इस नर-मेघ का नेतृत्व स्वयं अशोक कर रहा था। रण-क्षेत्र के कहर और



दयनीय, वीभत्स और कठोर दृश्यों को देख कर उसे आत्म-यंत्रणा हुई। वह पाश्चाताप की अग्नि में जलने लगा।

अशोक एक महत्वाकांक्षी राजपुरुष था। किन्तु, उसकी महत्वाकांक्षा, पराक्रम की लालसा; उसकी तृष्णा सभी पाश्चाताप की अग्नि में जलने लगी। रणक्षेत्र में अपंगों को देख, मारे गये सैनिकों की रोती हुई माताओं और बहनों को देख, जलते हुए घरों और अध-जले पेड़ों के टूठों को देख उसके हृदय में अपार करुणा घर कर गई। विजय-श्री से विभूषित अशोक का मस्तक नत हो उठा, कन्धे ढीले पड़ गये, गले में आँसुओं का काँटा अटका, तन में ग्लानि की ठण्डी-ठण्डी सुरसुरी दौड़ गई। उसने सम्पूर्ण प्रायश्चित्त करने का संकल्प किया।

**प्रायश्चित्त :**—अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य भी, वृद्धावस्था में, तापस जीवन की ओर उन्मुख हुए थे। किन्तु वे व्यक्तिगत मोक्ष के कामी थे। अशोक को अन्तिम भरी जवानी में पाप का दाग लग गया। साथ ही राजशक्ति कितना अनाचार कर सकती थी उसका ज्वलन्त उदाहरण उसके ही हाथों उसी की आँखों के सामने आया। रणदक्ष सेनाध्यक्ष सम्राट् अशोक ने अपने जीवन की दिशा ही परिवर्तित कर दी—केवल व्यक्तिगत पाप-क्षालन करने के लिए नहीं वरन् इस पूरे संसार के अनाचार को दूर करने, समस्त जनता का संभावी क्रूर व्यक्ति का, संभावी अत्याचारी का, संभावी दुष्ट का, पहले ही से, हृदय संस्कार करने के लिए। यह एक ऐसा स्वप्न था, जिनको कार्यान्वित करने के लिए उसने कुछ भी न उठा रखा।

**उपगुप्त**—उस समय, बौद्ध धर्म भारत के विशेष-विशेष प्रदेशों और क्षेत्रों में ही समिति था। अंग, वंग और उत्तर तथा दक्षिण बिहार के अनिरिक्त, उसके प्रमुख केन्द्र दो ओर थे। एक मथुरा और दूसरा उज्जयिनी, वह सर्व विदित था कि बौद्ध धर्म भावुक करुणा-प्रधान धर्म है। इसलिए यह ब्राह्मण धर्म के प्रति आकृष्ट न होकर बौद्ध धर्म की ओर ही खिंचा। उसके सौभाग्य से उसे मथुरा से एक बौद्ध विद्वान सन्त उपगुप्त का सम्पर्क प्राप्त हुआ।

संभवतः, उनके प्रभाव में आकर उसने भारत में तथा उसके बाहर, बौद्ध धर्म का प्रचार किया ।

**प्रयत्न—**अशोक ने धर्म-विजय की केवल घोषणा नहीं की, वरन् वह स्वयं देश में भ्रमण करता और व्यक्तिशः बौद्ध धर्म का प्रचार करता । यही नहीं उसके उच्च सरकारी अधिकारियों का एक बड़ा काम यह भी था कि वे स्वयं, राजा के पद-चिन्हों पर चलते हुए, अपने सरकारी काम-काज के अलावा, धर्म-प्रचार करें । निःसन्देह, यह बड़ा कठिन काम था । कई उच्च राज कर्मचारी उससे नाराज रहे होंगे, किन्तु कुछ कह न पाते होंगे । बौद्ध धर्म के अन्तर्गत बढ़ते हुए मतभेदों के बारे में अशोक को बड़ी चिन्ता थी । उसने पवित्र स्थानों पर शास्त्रार्थ के लिए सभाएँ आयोजित करवाई तथा तृतीय बौद्ध संगति का आयोजन किया । यह संगति बहुत बड़ा बौद्ध सम्मेलन था, जिनमें अनेक विवादास्पद विषयों पर चर्चा हुई थी । इस सम्मेलन में बौद्धों के मतभेद खुल कर सामने आ गये ।

**धर्म-नीति—**किन्तु, अशोक दार्शनिक नहीं था, न दार्शनिक बनने की उसे कोई इच्छा ही थी, वह मानव-कल्याण तथा करुणा से प्रेरित सदाचार-वाद पर जोर देता था । इसलिए, उसने बौद्ध-धर्म के केवल वे ही सिद्धान्त चुने, जिनका सम्बन्ध उच्च नैतिक आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन से था वह सिद्धान्तशाली नहीं था, धर्म-शाली नहीं था । विद्वान बौद्ध सन्त उपगुप्त स्वयं करुणा के अवतार थे ( रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने “संन्यासी उपगुप्त” शीर्षक के अन्तर्गत, बहुत ही सुन्दर कविता लिखी है, जिसमें उपगुप्त का भावुक करुणामय व्यक्तित्व उभर कर आ गया है ) उनके प्रभाव से, अशोक को वास्तविक मानव-दृष्टि प्राप्त हुई थी ।

अतः, उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए केवल वे ही उपदेश चुने, जो सभी धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं, साथ ही जो हो सकते हैं । सहज-बुद्धि-सम्मत हो सकते हैं । उन मानव-सिद्धान्तों पर उसने बहुत जोर दिया ।

उसने बौद्ध धर्म के मानव-करुणापन्न नैतिक सिद्धान्तों का, ( न कि दार्शनिक सिद्धान्तों का ) प्रचार किया । उसने कहा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच परस्पर-सद्भावना, तथा समानता का बर्ताव हो । मनुष्य अपनी क्षुद्र मनोवृत्तियों तथा हीन मनोविकारों का दमन करे, हृदय को उदार बनाये, पवित्र आचरण करे, पशुओं पर दया करे तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता का प्रयोग करे—दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपने भीतर की पशुता का दमन करते हुए, अंतःकरण में सच्ची मनुष्यता जागृत करे ।



इसलिए, उसने न केवल ऐसे सिद्धान्तों को प्राचारार्थ चुना जो सहज-बुद्धि-सम्मत थे, वरन् यह भी (महत्त्वपूर्ण बात है) कि उसने साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने के महान् प्रयत्न किये ।

उसने साम्प्रदायिक समस्याओं को निरा-सारनाथ तीर सिंह और अशोक चक्र करण के उद्देश्य से स्पष्ट सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया । वे इस प्रकार हैं—

( १ ) मूल—विभिन्न धर्मों में जो सिद्धान्त समान रूप से पाये जाते हैं, उनका प्रचार करना, उन पर जोर देना, क्योंकि वे सिद्धान्त, वस्तुतः मानव-एकता के प्रमाण हैं तथा मानव-एकता स्थापित करने के लिए केवल इन्हीं सिद्धान्तों का सर्वाधिक और व्यापकतम प्रचार होना चाहिये । साथ ही प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि वह इन्हीं सर्वधर्म-सम्मत मूल सिद्धान्तों पर जोर दे ।

( २ ) वाचागुति—अन्य धर्मों के विरुद्ध जहर न उगला जाय, उनकी आलोचना न की जाये, मुँह से ऐसे शब्द न निकलें जिनसे यह प्रतीत हो कि

अन्य धर्महीन हैं और हमारा ही धर्म श्रेष्ठ है, दूसरे धर्म को हीन भाव से देखना, उसके अनुयायियों का हृदय दुखाने का प्रयत्न करना पवित्र आचरण नहीं है सदाचार नहीं है, अनाचार है।

( ३ ) समवाय—साथ ही यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मावलम्बियों में मेल-जोल बढ़े; परस्पर-सद्भाव उत्पन्न हो, एक दूसरे का ज्ञान हो, इसलिए यह आवश्यक है कि सभी धर्मों के उपदेशों को जनता तक पहुँचाने के लिए, सर्व धर्म-सभाएँ की जायें जहाँ कि जनता एक साथ बैठकर सभी धर्मों के उच्च तत्त्व ग्रहण कर सके।

( ४ ) बहुश्चुत—अर्थात् यह आवश्यक है कि हमारा ज्ञान केवल एक ही सम्प्रदाय या धर्म के ग्रन्थों तक ही सीमित न रहे वरन् सभी धर्मों के मूलभूत ग्रन्थों का अध्ययन करके हम वास्तविक उदार मानव-दृष्टिकोण तथा सच्चा धर्म-भाव ग्रहण कर सकें।

सम्राट् अशोक ने यदि बौद्धों के विहारों और मठों को सहायता पहुँचाई तो ब्राह्मणों के मन्दिरों को भी। उसने, प्रजा के प्रति एक सम्राट् की सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से ही आजीवकों, ब्राह्मणों, तीर्थकों तथा निर्ग्रन्थों तक को दान दिया, और तरह-तरह की सहायता पहुँचाई। अपने राज्याभिषेक के 'वारह्वे' वर्ष में उसने आजीवकों को एक पर्वत के भीतर कुछ गुफाएँ प्रदान कीं। आजीवक सम्प्रदाय अशोक के समय में बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

राज-शक्ति का प्रयोग—निःसन्देह, उसके राजकर्मचारी जो विष्णुगुप्त कौटिल्य की परम्परा में बढ़े होंगे, उन्होंने जब यह देखा होगा कि सम्राट् की विशेष आज्ञा से जेल के दरवाजे खोल दिये गये हैं और कैदी रिहा हो चुके हैं, और होते जा रहे हैं तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ होगा। अशोक ने केवल अतिभयानक अपराधों के बन्दियों को, जिन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया था, रिहा नहीं किया; किन्तु उनका वध कुछ दिनों के लिए रुकवा दिया। इसी प्रकार उसने एक आदेश द्वारा ऐसे पशु-पक्षियों का वध निषिद्ध घोषित किया जिनका

मांस समान्यतः खाया नहीं जाता था, किन्तु आखेट के प्रेमी जिन्हें अक्सर मारा करते थे ।

देश मानव-एकता स्थापित करने का उद्यम करते हुए, अशोक व्यापार-व्यवसाय की बुद्धि के हेतु तथा यात्रियों के सुख के लिये, बड़े-बड़े रास्ते बनवाये उसके किनारे-किनारे पेड़ लगवाये, स्थान-स्थान पर विश्राम-गृह तथा धर्मशालाएँ बनवाई, चिकित्सालय स्थापित किये और ऐसे वृक्ष लगाने की आज्ञा दी जो रोगियों के रोग को दूर करने में सहायक हों ।

**स्तंभ-स्तूप शिला-लेख**—अशोक ने धर्म प्रचार के लिए, देश के विभिन्न स्थानों और दिशाओं में स्तंभ और स्तूपों का निर्माण किया, जिन पर उसने अभिलेख अंकित किये । वह हमारे लिए लगभग ३० अभिलेख छोड़ गया । इन अभिलेखों में सदाचार की शिक्षा दी गई है । ये अभिलेख, उत्तर पश्चिम की सीमान्त प्रदेशों से लेकर जो सौराष्ट्र और बम्बई तक है और वहाँ से लेकर बिहार तक हैं । वे साम्राज्य के हर भाग में बिखरे हुए हैं । ये अभिलेख—१४ शिला-लेखों, ७ स्तंभ-लेखों और ७ अपेक्षाकृत छोटे अभिलेखों के रूप में अभी भी वर्तमान हैं । इन अभिलेखों से अशोक की आवाज हजार साल पार करती हुई हम तक आ जाती है । उसमें पूज्य व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा करने का, अहिंसा पालन करने का, माता-पिता की आज्ञा मानने का, प्रेम और सद्भाव से रहने का उपदेश दिया गया है । उसके स्तंभ-आलेख, अन्य स्थानों के अतिरिक्त कौशाम्बी, साँची और सारनाथ में हैं । वे तत्कालीन कला के अद्भुत नमूने हैं । इन अभिलेखों से उस समय के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है । ये आलेख, सैकड़ों वर्षों की गरमी सरदी और वर्षा सहते रहे, फिर भी मिटे नहीं हैं ।

**विदेशों से सम्पर्क**—अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों और उपदेशों से विदेशों को परिचित कराने के लिए, अशोक ने सीरिया के अधिपति एन्टीगोनस द्वितीय, मेसिडोनिया के एन्टीगोनस गोनातास, मिस्र के फिलाडेल्फस तथा साइरिन के मागास तथा एपीरस के अलेक्जैण्डर के दरबारों में अपने धर्म

महामात्र ( धर्म-राजदूत ) नियुक्त किये । साथ ही, उसने मध्य एशिया के खोत्तन तथा उसके पूर्व के देशों के यहाँ भी अपने धर्म महामात्र भेजे । भारत के मोल, चेर, पाण्ड्य राजाओं के दरबारों में भी उसके राज-प्रतिनिधि नियुक्त थे । इन नियुक्तियों का उद्देश्य उन-उन देशों की प्रजाओं को, धर्म के मूल तत्त्वों से अवगत कराना तथा सदाचार और पवित्र का प्रचार करना था ।

**धर्म-प्रचारक**—सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका तथा बर्मा में धर्म-प्रचार के लिए भेजा । भारत के विभिन्न भागों में तो ये धर्म-प्रचारक काम करते ही थे, वे विदेशों में भी गये । मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तक वे जा पहुँचे । उधर उन्होंने पूर्वी एशिया में, खासतौर से खोत्तन में प्रवेश किया ।

### मध्यपूर्वी एशिया में भारतीय उपनिवेश

काश्मीर के पूर्व-उत्तर की सीमा पर, सिगक्यांग नामक प्रदेश है । उसमें तारीम, यारकन्द आदि नदियाँ बहती हैं । तारीम अपनी सहायक नदियों को लेकर लोबनोर नामक एक रेगिस्तानी खारे पानी की भील में गिरती हैं । अशोक के काल में वहाँ आर्य वंशीय ऋषिक ( तोखारी ) जातियाँ रहती थीं । अशोक ने तक्षशिला के अपराधियों को जेलों से रिहा करके उन्हें वहाँ बसने के लिए भेज दिया । वहाँ उन्होंने भारतीय उपनिवेश कायम किये । आर्यवंशीय जातियों में वे भारतीय उपनिवेश स्वयं गये । अशोक ने वहाँ भी धर्म-प्रचार किया । आगे लगभग एक हजार दो सौ वर्ष तक ये भारतीय उपनिवेश वहाँ बने रहे । चीन ने इस क्षेत्र में बाद में प्रवेश किया । खोत्तन वहाँ की मुख्य नगरी थी । वह शहर बौद्ध धर्म का एक केन्द्र था ।

**प्रचार की भाषा**—अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क के लिये, अशोक ने पाली भाषा का प्रचार किया । पाली, तत्कालीन प्राकृतों के अधिक निकट थी । साथ ही, वह स्वयं पुरानी प्राकृत होने के कारण, अपनी अपेक्षाकृत प्राचीनता के कारण, वह विभिन्न प्राकृत भाषा-भाषी लोगों के लिए अधिक मानवीय और सम्माननीय भी थी । अशोक के काल में पाली राजभाषा तो बन ही गई, उसने

राष्ट्रभाषा का रूप भी धारण कर लिया । अशोक के आदेश पाली में ही लिखे मिलते हैं ।

**अशोक का साम्राज्य**—दक्षिण का कुछ अन्तिम भाग छोड़ कर शेष भारतवर्ष में तथा अफ़ग़ानिस्तान बलूचिस्तान तक और उसके आगे उत्तर में अशोक का साम्राज्य फैला हुआ था । अशोक के धर्मोत्साह ने भारत में सुदीर्घ काल तक शान्ति बनाये रखी तथा विदेशों में भी भारतीय सत्ता तथा प्रभाव ( जैसे खोत्तन में ) विस्तृत किया । दुःख की बात यह है कि आगे के शासकों ने उसकी नीति का पालन नहीं किया ।

अशोक की महानता इसमें है कि वह न केवल भारतीयों को ऐक्य-सूत्र में बद्ध करना चाहता था, वरन् विश्व भर को । अहिंसा पर उसका बल, प्रेम और सद्भाव पर उसका जोर क्या बताता है । मनुष्य के अन्तःकरण की उदात्त वृत्तियों को प्रोत्साहित करके और उन्हें सक्रिय बना कर, वह विश्व शान्ति, विश्व-पैनी और बन्धु भाव द्वारा मानव-एकता प्रतिष्ठित करना चाहता था । इसलिए 'धर्म-प्रचार' उसका अद्वितीय विलक्षण प्रयोग था, जिसने उसे पूरे विश्व के इतिहास में अमर बना दिया । साथ ही उसका यह परिणाम भी हुआ कि बौद्ध धर्म के सूत्र में बंधकर, अनेकानेक देशों के लिए भारत एक पुण्यभूमि, पवित्र भूमि बन गया । उन देशों में भारत की केवल ख्याति ही नहीं बढ़ी, वरन् स्वयं अशोककालीन भारत ने अनेकानेक विदेशी तत्त्व आत्मसात् कर लिये । अशोक का भारत, विश्व का एक ज्योति स्तंभ था, यह क्यों भुलाया जाय ।

**मृत्यु के बाद**—अशोक की मृत्यु दयनीय स्थिति में हुई । उसका खजाना खाली हो गया । निरन्तर दान ने, तथा निर्माण ने धर्म-प्रचार में लगने वाले व्यय ने उसे कंगाल बना दिया । उसके उत्तराधिकारी असंतुष्ट हो उठे । अमन्तुष्ट उत्तराधिकारियों से स्वार्थ-ग्रस्त राज कर्मचारियों ने साँठ गाँठ की ।

किन्तु, उसे कोई पश्चात्ताप नहीं था । आदमी के सामने दो ही रास्ते हैं । या तो वह सच्चा मनुष्य बने या पशु । उसने पशुत्व से इनकार कर दिया था ।

अपनी उदात्त मानसिक भूमि पर रह कर, उसने ईसा पू० ८३६ वें वर्ष में प्राण त्याग दिये ।

अशोक की मृत्यु के कुछ ही वर्षों बाद, प्रतापी मौर्य साम्राज्य सदा के लिये अस्त हो गया । उसके अन्तिम राजा का नाम जानने की भी कोई आवश्यकता नहीं है ।

### प्रश्न

१. अशोक के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालिये ।
२. “अशोक की धर्म-नीति ने मौर्य साम्राज्य का नाशकर डाला” इस मत का विवेचन कीजिए ।
३. अशोक के धर्म-प्रचार पर विस्तृत निबन्ध लिखिए ।
४. देश से बाहर, अशोक ने क्या-क्या काम किये ?
५. विश्व में अशोक को महान क्यों माना जाता है ? उस पर अपने विचार प्रकट कीजिये ।
६. साम्प्रदायिक एकता के निर्वाह के लिये अशोक ने क्या-क्या किया ।
७. टिप्पणी लिखिए —  
संघमित्रा, खोत्तन, उपगुप्त, वाचागुति बहुश्चुत ।



## भारत के स्वर्ण-युग की रहिमियाँ । ६

[ गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है । केवल एक ही उत्तर है—वह यह कि शान्ति, सुरक्षा, सुख और समृद्धि के साथ-साथ, मानव की सृजनशील प्रतिभा ने अपने नए शिखर प्रस्तुत किये । चाहे गणित-सिद्धान्त हो, चाहे दर्शन, चित्रकला हो, चाहे व्यापार—एक बात सर्वत्र दिखाई देती थी । वह है नवीन के प्रति अनुराग पूर्ण उत्साह और यदि वह सार्थक है तो उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न । ब्राह्मण विद्वान् बौद्धों की युक्तियाँ लेकर उन्हीं के द्वारा उन्हीं को विचार धारा का खंडन करते । ठीक इसी प्रकार, बौद्धशास्त्री अपने नये तर्कशास्त्र का विकास करते जाते । जो भी नवीन ग्रहण किया जाता वह इतना आत्मसात् कर लिया जाता कि व्यक्तित्व के अभिन्न अङ्ग के रूप में प्रस्तुत होता किन्तु, यह नवीन विदेशी नवीन नहीं था । वह भारतीय व्यक्तित्व की उपज थी । शोध, अनुसन्धान, ज्ञान-व्यवस्था का निर्माण, उन दिनों की विशेषता यह थी—चाहे वह शल्य-चिकित्सा हो, चाहे धर्म । दूसरी विशेषता यह थी कि उस काल में धार्मिक कलह का नाम भी नहीं था ]

उस समय, हमारे विद्वान् विचारक कितनी साहस पूर्ण मान्यताओं को जन्म देते थे इसके हम दो एक उदाहरण देगे । ज्योतिर्विद ब्रह्मगुप्त ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि 'प्रकृति के नियम के अनुसार ही समस्त वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं, क्योंकि पृथ्वी का स्वभाव वस्तुओं को आकर्षित करना और रखना है ।' क्या उक्त सिद्धान्त मूलतः पाश्चात्य वैज्ञानिक न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के समान नहीं है । यूरोप जब पृथ्वी को चपटीमान रहा था, हमारे यहाँ

वह गोल मानी जाती थी। वह अपने अक्ष पर घूमती भी थी उनका व्यास भी निकाला जा चुका था।

**शास्त्र**—भारत अपने प्रसिद्ध गणितशास्त्री और ज्योतिर्विद आर्यभट्ट को कभी भी नहीं भूल सकता। आर्यभट्ट ने दशमलव पद्धति का उपयोग किया। वर्गमूल और घनमूल निकालने के तरीके खोज निकाले। ज्योतिर्विदों में वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त का नाम भी अमर है।

**साहित्य**—कालिदास का नाम जो नहीं जानता, उसे अशिक्षित समझा जायेगा। वह इसी काल में हुआ था। वह संभवतः, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के दरबार में था। उसके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं अभिज्ञान शाकुन्तल और मालविकाग्नि मित्र। ये नाटक हैं—उसने दूसरे भी नाटक लिखे। काव्यों में उसका मेघदूत और रघुवंश सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसकी संस्कृत भाषा प्रांजक सरल और कोमल है।

कवि भैरवी कृत 'किराताजुनीय' काव्य विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक, सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता', अमरसिंह कृत 'अमरकोष, (यह एक बृहद् शब्दकोष है) पंचतंत्र तथा हितोपदेश इसी युग की रचनाएँ हैं। इनके सिवाय, और भी कई हैं, उदाहरणतः दण्डीकृत दशकुमार चरित।

पंचतंत्र और हितोपदेश, जो किसी विष्णुशर्मा द्वारा लिखे गये थे, बहुत लोकप्रिय ग्रन्थ थे।

गुप्त सम्राट् संस्कृत भाषा के भक्त थे। उन्होंने उसे अत्यधिक प्रोत्साहन किया। नतीजा यह हुआ कि प्राकृत भाषाएँ अधिक उन्नति न कर सकीं, यद्यपि थोड़ी बहुत रचना उनमें भी होती रही।

**कला** :—मूर्ति-कला में जिसे गान्धार शैली कहा जाता है, अब उसका पूरा लोप हो गया उसके स्थान पर अब उसमें पूर्णतः भारतीय शैली का आविर्भाव हुआ। विष्णु, कृष्ण, देवी की मुखों पर जो तेज और सौन्दर्य है, उसी से पता चल जाता है कि यह एकदम नई शैली है, जो पूर्णतः भारतीय है। देवी, देवताओं की जो मूर्तियाँ इस काल में बनीं, उनमें भारतीय कला-शैली

स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस काल में, चित्रकला ने विशेष उत्कर्ष किया। अजन्ता और एलोरा आदि गुफा-मन्दिरों में जो चित्र, आज भी सारे कला-प्रेमी जगत् का ध्यान अपनी ओर खींचे हुए हैं, वे गुप्तकाल में ही बने थे। गुप्त सम्राट् संगीत के बहुत प्रेमी थे। समुद्रगुप्त तो विशेषतः संगीत का विज्ञ था। गुप्तकाल में, इस कला की भी उल्लेखनीय उन्नति हुई। भवन-निर्माण कला ने भी उत्कर्ष किया।

**व्यापार-व्यवसाय :**—गुप्त काल में विदेशों से भारत का सम्बन्ध बराबर बना रहा। पश्चिम में रोमन साम्राज्य से और पूर्व में पूर्वी द्वीप समूह से खूब व्यापार होता था। भारत के विभिन्न स्थानों में रोमन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, इससे यही सूचित होता है।

**संस्कृति का प्रसार :**—भारतीय संस्कृति तो अशोक के काल से ही विदेशों में फैल रही थी। गुप्त काल तक आते-आते अब वह मध्यएशिया से लेकर चीन तक और दक्षिण पूर्वी एशिया में फैल गई। दक्षिण पूर्वी एशिया में, पहले जो भारतीय उपनिवेश थे, अब वे साम्राज्यों का रूप धारण करने लगे। बौद्ध मत के अतिरिक्त अब यहाँ वैष्णव और शैवमत भी फैलने लगा। यहाँ के विहारों और मन्दिरों से निर्माण में भारतीय कला की छाया दिखाई देने लगी। जावा, सुमात्रा, हिन्दचीन, बोर्नियो अनाम आदि देशों में जो सांस्कृतिक प्रसार हुआ, उसमें दक्षिण भारतीय राज्यों का भी हाथ था।

**धार्मिक अवस्था :**—इस युग में कहीं भी धार्मिक कलह नहीं थी। गुप्त सम्राट् वैष्णव थे। किन्तु वे अन्य धर्मों के प्रति बहुत उदार थे। उनके राज-कर्मचारियों में बहुत से शैव और बौद्ध थे। किन्तु राजाश्रय केवल ब्राह्मण धर्म को ही था।

एक ही परिवार के सदस्य कभी-कभी भिन्न धर्मानुयायी होते थे। राजा शान्ति मूल स्वयं वैदिक धर्म को मानने वाला था किन्तु उसकी बहुएँ, वहनें और लड़-कियाँ बौद्ध धर्म को मानती थीं। गुप्त वंश में भी कई सम्राट् बौद्ध हुए। सम्राट् कुमारगुप्त के दो लड़कों में से एक पुरगुप्त बौद्ध था, स्कन्दगुप्त वैष्णव था।

परवर्ती मगध-राज वेनगुप्त स्वयं वैष्णव था किन्तु उसने महायान सम्प्रदाय के वैवर्तक संघ को आर्थिक सहायता की थी। वैष्णव गुप्त सम्राटों के दान से, नालन्दा विश्वविद्यालय चलता था, यह विश्वविद्यालय बौद्धों का था।

यद्यपि आपेक्षिक रूप से बौद्ध धर्म सिकुड़ गया था, फिर भी कौशाम्बी, सारनाथ, मथुरा, काँची ( दक्षिण भारत ) वल भी ( सौराष्ट्र ) में बड़े-बड़े बौद्ध विहार थे, जहाँ हजारों की संख्या में बौद्ध भिक्षु रहते थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय परम भागवत थे, किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों की शिक्षा के लिए वसुबन्धु नामक एक महान बौद्ध आचार्य को नियुक्त किया था। ये वसुबन्धु वही थे, जिन्होंने बौद्धों के पृथक् तर्कशास्त्र का विकास किया। उनके अतिरिक्त, असंग, बुद्ध घोष पिड-नाग, धर्म कीर्ति आदि प्रसिद्ध आचार्य हुए, जिन्होंने बौद्ध धर्म की कीर्ति को बढ़ाया है।

**दार्शनिक उत्थान**—इस युग में, चमत्कार पूर्ण रूप से, एक के बाद एक महान् दार्शनिक होते चले गये। सब ओर, विचार-विनिमय, स्वतन्त्र चिन्तन, शास्त्रार्थ और साहस पूर्ण निष्कर्षों का वातावरण था। उस युग में दार्शनिक विषयों का गहन मन्थन हुआ।

सांख्य दर्शन ने विशेष विकास किया। ईसा की चौथी सदी में, ईश्वर-कृष्ण नामक पण्डित ने 'सांख्य कारिका' लिखी। न्यायसूची की मीमांसा करते हुए वात्स्यामन ने एक भाग लिखा जिसमें बौद्धों के योगाचार और माध्यमिक नामक दो समुदायों की दार्शनिक युक्तियों का खण्डन किया गया। उसी प्रकार वैशेषिक दर्शन के प्राचीन सूत्रों की व्याख्या करते हुए 'पदार्थ धर्म संग्रह' नामक एक महत्व पूर्ण ग्रंथ लिख गया।

बौद्ध-सम्प्रदाय तब तक न केवल महायान और हीनयान नामक दो सम्प्रदायों में बँट गया था वरन् दर्शन के क्षेत्र में भी अनेक सम्प्रदाय कायम हो गये थे। हीनयान सम्प्रदाय की उत्पत्ति में बुद्ध घोष नामक विद्वान का बहुत बड़ा हाथ था। महायान सम्प्रदाय के दो भाग हो गये थे माध्यमिक और

योगाचार । आर्यदेव ने, जो नागार्जुन का शिष्य था, चतुःशतक नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ लिखा ।

योगाचार सम्प्रदाय के विकास में, असंग का बहुत बड़ा हाथ था । असंग प्रकाण्ड पंडित था । भारताय दर्शन शास्त्र का उसे उत्तम ज्ञान था । असंग और उसके भाई वसुबन्धु ने बौद्ध दर्शन शास्त्र का अत्यधिक विकास किया । यह वही वसुबन्धु था, जिसको चन्द्रगुप्त ने अपने राजकुमारों के अध्ययन के लिए शिक्षक नियुक्त किया था । आचार्य असंग, वसुबन्धु, दिग्नाग आदि महान् बौद्ध विद्वान् हुए, जिन्होंने गुप्त-युग के बौद्धिक उत्कर्ष को ऐतिहासिक बना दिया । खेद है कि दिग्नाग के ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो पाते, केवल उनके कुछ चीनी और तिब्बती अनुवाद मिलते हैं ।

गुप्तकाल के कुछ देवालय अभी भी मिलते हैं । ग्वालियर के समीप पद्मावती स्थान पर यक्ष का मन्दिर व राजगिर में मणिनाग का मन्दिर । विभिन्न अवतारों में से वाराह और कृष्ण अधिक लोकप्रिय थे ।

दक्षिण में पुंड्रवर्धन और ऐरन में वाराह के मन्दिर हैं । गुप्तकाल के पूर्व, सूर्य का एक मन्दिर सिर्फ मुलतान में था । अब सूर्य मन्दिर ग्वालियर, इन्दौर व बबेलखंड में भी बनाये गये । अनेक स्थानों पर शिव के मन्दिर भी थे ।

इस युग में शैव धर्म का भी अभ्युत्थान हुआ । वैसे भी, वाकाटक तथा भार शिव नागवंशी नरेश शैव था । हूण राजा मिहिर गुप्त शैव बन गया था । सब धर्म एक दूसरे से शास्त्रार्थ और स्पर्धा करते हुए भी, एक दूसरे से सीखते थे ।

राजनीतिक व्यवस्था—गुप्त सम्राट् पूर्वकालीन राजाओं की भाँति, निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक थे । ईसा की तीसरी सदी बाद, अब उनमें 'देवता के गुण' भी पाये जाने लगे । उनकी उपाधियाँ लम्बी चौड़ी होने लगीं । राजतंत्र स्वेच्छाचारी होने पर भी, समाज की विभिन्न संस्थाओं संगठनों को उसी प्रकार स्वायत्त शासन प्राप्त था, जैसा कि पहले से चला आया था ।

राजा प्रजा-वत्सल थे। जनता सुखी थी। प्रशासन-यन्त्र लम्बा-चौड़ा हो गया था। राज कर्मचारियों के नये पद-नाम निकल आये थे “महा-बलाधिकृत” ( मुख्य सेनाध्यक्ष ), “महादण्ड नायक” ( सुरक्षा व्यवस्थापक ) “संधि-विग्रहिक” ( शान्ति तथा युद्ध सम्बन्धी निर्णय करने वाला ) इत्यादि। साम्राज्य में सर्वत्र शान्ति तथा सुख विद्यमान था।

### प्रश्न

१. गुप्त कालीन कला की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
२. गुप्त राजाओं की धर्म सम्बन्धी नीति पर एक छोटी-सी टिप्पणी लिखिए।
३. तत्कालीन धार्मिक अवस्था का विवेचन कीजिए।
४. टिप्पणी लिखिए :—  
असंग, माध्यमिक और योगाचार, अजन्ता, चन्द्रगुप्त द्वितीय।

## प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय । ७

[ भारतीय संस्कृति की कीर्ति को चारों ओर प्रसारित करने में हमारे प्राचीन विश्व-विद्यालयों ने बड़ा काम किया, सभी तत्कालीन शास्त्र तथा विज्ञान वहाँ पढ़ाये जाते थे, किन्तु उनका मुख्य बल धर्म तथा दर्शन पर ही था । इन विश्व-विद्यालयों का ज्ञान प्राप्त करने से, हमें तत्कालीन भारतीय संस्कृति की क्षमताएं और सीमाएँ दोनों का ज्ञान हो जाता है । ]

प्राचीन भारत में ज्ञान और ज्ञानी को उचित सम्मान प्राप्त होता रहा है । ज्ञान-प्रदान का कार्य ब्राह्मणों के हाथ में था । वे गुरुकुलों तथा आश्रमों में शिक्षा-प्रदान करते थे । ये आश्रम, साधारणतः, ( किन्तु इसके अपवाद भी हैं ) वनों में रहते ।

शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल द्वि जाति को था । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने पुत्रों को गुरुओं के पास भेजते थे । प्रारंभ में, शिक्षा का अधिकार स्त्रियों को भी था ।

किन्तु, ज्यों-ज्यों राज्यसत्ता का विकास होता गया, त्यों-त्यों स्त्रियों के अधिकार कम होते गये । स्त्री पति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनती गई । उसकी स्वतंत्रता का भी क्रमशः लोप होता गया । गुप्त काल में अर्थात् ईसा की चौथी सदी में स्त्री स्वातंत्र्य बहुत कुछ लुप्त हो गया था । फिर भी स्त्री-शिक्षा की प्राचीन परम्परा किसी न किसी अंश में बनी हुई थी ।

शूद्रों को शिक्षा का अधिकार बिलकुल नहीं था । उन्हें न केवल अज्ञान के अन्धकार में रखा जाता, वरन् उनमें से कोई महत्वाकांक्षी व्यक्ति यदि उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता तो उस पर अत्याचार किये जाते । शूद्रों की

संख्या हर्ष काल तक आते-आते बहुत बढ़ गई थी। भारतीय जन-समाज में, संख्या की दृष्टि से, वे कम नहीं थे। सारा सेवा-कार्य सब व्यवसाय वे ही करते। शिल्पी शूद्र ही था, कृषक भी। ये सब अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुए थे। जो भी ज्ञान उनके पास था, वह केवल व्यवसाय-संबंधी था। व्यावसायिक शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था। कला-कारीगरी की तालीम दूकान या कर्मशाला या खेत में बैठकर ही प्राप्त की जा सकती थी। संक्षेप में, जिसे हम उच्चतर शिक्षा कहते हैं, उनसे शूद्र वंचित रहा। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित समस्याओं पर भारत के सुविकसित मस्तिष्क विचार नहीं कर सके। ऐसे मस्तिष्क जो सिद्धान्तों पर सोचा करते हैं। उच्चतर शिक्षा के अभाव में, शिल्पी शूद्र, उच्च धनिक वर्गीय अभिरुचि को तृप्त करने के लिए सुन्दर से सुन्दर वस्तुएँ बनाता। किन्तु, उनके निर्माण की प्रक्रियाओं को जानते हुए भी, वह उन प्रक्रियाओं में समाये हुए वैज्ञानिक सिद्धान्तों का आविष्कार न कर सका, उन सिद्धान्तों को खोज नहीं पाया। फलतः, उच्चतर शिक्षा के अभाव में, शिल्पी शूद्र के पास सूक्ष्म और अमूर्त चिन्तन की शिक्षा नहीं रही !! उधर; सूक्ष्म और अमूर्त बौद्धिक चिन्तन की प्रतिभा रखने वाले मनीषी उत्पादन की प्रक्रियाओं और उत्पादन के केन्द्रों से बहुत दूर थे। उनमें और शिल्पी शूद्र में बहुत फासला था। हाँ, वह सही है कि हमारे यहाँ विज्ञान का भी विकास हुआ। किन्तु यह विकास क्रम बहुत संक्षिप्त है। साथ ही, शिल्प-कार्य की पद्धतियों के संबंध में हमारे यहाँ ग्रन्थ-रचना नहीं हो सकी। पुराना रंग-मिश्रण किन वस्तुओं से किस प्रकार होता था, दुर्ग निर्माण किस विधि तथा पद्धति से होते थे—इत्यादि, व्यावहारिक बातों के संबंध में हमारे यहाँ ग्रन्थ-रचना न होने के फलस्वरूप बहुत सी पुरानी निर्माण-विधियाँ और विद्याएँ लुप्त हो गईं। आज हम प्राचीन कला-कृतियों को देखकर केवल आश्चर्य ही कर सकते हैं, और कुछ नहीं! वे कला-कृतियाँ इतनी स्यायी और सुन्दर हैं कि इच्छा होती है कि हम उनकी निर्माण-विधियों को जाने। लेकिन, जान नहीं पाते। ऐसा क्यों हुआ? इसके दो कारण थे। एक तो उच्चवर्गीय शिक्षित वर्ग निर्माण कार्य से



बहुत दूर था; और दूसरी ओर निर्माण-कार्य करने वाले लोग उच्चतर शिक्षा से बहुत दूर थे ।

एक ओर महान् प्रतिभाशाली ज्ञानी थे—वे स्वयं ज्ञान के शिखर थे तो दूसरी ओर शेष जनता अपढ़ थी, वह अज्ञान के अन्धकार में डूबी हुई थीं । फलतः, उच्च वर्गों में सूक्ष्म से सूक्ष्म और ऊँचे से ऊँचे दार्शनिक विचार पाये जाते थे तो दूसरी ओर अपढ़ लोगों में जादू-टोना, जन्तर-मन्तर, भूत-पिशाच-पूजा भी प्रचलित थी ।

**प्राचीन शिक्षा का ध्येय**—शिक्षा का ध्येय ज्ञान-दान तथा चरित्र-निर्माण—दोनों एक साथ थे । सांस्कृतिक तथा नैतिक परम्पराओं को जारी रखना उनका प्रमुख लक्ष्य था । उन दिनों गुरु चरित्रवान् थे तथा शिष्य भी । गुरु-शिष्य सम्बन्ध आज से भिन्न था । गुरु मार्ग-दृष्टा था । शिष्य को उसके प्रति श्रद्धा रखना और उसकी सेवा करना आवश्यक था ।

**पाठ्यक्रम**—पाठ्यक्रम में वैदिक साहित्य, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, व्याकरण और उनके अतिरिक्त, शास्त्रविद्या, चिकित्सा तथा प्रशामन की कला भी शामिल थी । पूरा पाठ्यक्रम लगभग १२ वर्ष का होता था । शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत, पठन, पुनरावृत्ति, स्मरण, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ भी सम्मिलित थे ।

**तक्षशिला**—प्राचीन काल के गान्धार देश में तक्षशिला विश्वविद्यालय का बड़ा नाम था । अनेक देशों और प्रान्तों के विद्यार्थी वहाँ पढ़ने आते थे । वहाँ ६८ विषय पढ़ाये जाते थे । धनिक-वर्ग के विद्यार्थी फीस चुकाते थे । गरीब वर्ग के विद्यार्थी सेवा करते थे । वहाँ कई हजार विद्यार्थी पढ़ते और सैकड़ों विख्यात शिक्षक थे । कई इतिहास-प्रसिद्ध पुरुषों ने वहाँ शिक्षा ग्रहण की, तक्षशिला भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय है । यह ईसा के जन्म के ७०० साल पहले प्रारम्भ हुआ और ईसा के जन्म के ३०० साल पहले तक विद्यमान था ।

**वाराणसी**—तक्षशिला के लुप्त हो जाने पर, वाराणसी विद्या का विशाल केन्द्र हुआ । वहाँ ब्राह्मण-साहित्य तथा संस्कृत-विद्या पढ़ाई जाती थी ।

**नालन्दा**—गुरुकुल में नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई । पटना के निकट बरगाँव नामक स्थान पर स्थापित किया गया था । यह महायान पंथी बौद्ध विश्वविद्यालय था । इस विश्वविद्यालय में व्याख्यानों, अध्ययन-गोष्ठियों, विचार-विनिमयों, वाद-विवादों तथा शास्त्रार्थ द्वारा शिक्षा दी जाती थी । यहाँ बौद्ध मत के सभी विचार-सम्प्रदायों के अतिरिक्त, मंत्र-विद्या, ज्योतिष पढ़ाया जाता था ।

यह एक अत्यंत भव्य और विशाल विश्वविद्यालय था । इसमें लगभग १० हजार शिक्षक तथा विद्यार्थी थे । शिक्षकों की संख्या एक हजार से ऊपर थी । उनमें बौद्ध धर्म के महान् विद्वान् जैसे धर्म-कीर्ति शीलभद्र, शान्त-रक्षित पद्म-संभव तथा गुण-मति विद्यमान थे ।

नालन्दा का खर्च अनेक राजाओं, धनिक व्यापारियों तथा सुमात्रा जैसे दूर-दूर के देशों की सहायता से चलता था । विश्वविद्यालय के पास अपने खर्च के लिए २०० से अधिक गाँव थे ।

शान्त-रक्षित तथा पद्म-संभव जैसे लोग, आगे चलकर, तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने गये । उसी प्रकार नालन्दा में विदेशों से आये हुए लोगों में त्रिपिटकाचार्य हुएनसाङ्ग, ह्वुएन चिङ्ग, ह्वुई ली, तांग, ताम्रो सिङ्ग, आर्यवर्मन तथा बुद्ध-धर्म जैसे महान् पण्डित थे ।

नालन्दा में ज्योतिष की पढ़ाई के लिए छोटी-बड़ी वेधशालाएँ भी थीं, अनेक ग्रन्थालय थे । ग्रन्थों की संख्या लगभग एक लाख थी ।

**वलभी**—मैत्रक वंश के राजाओं ने अपने यहाँ ( सौराष्ट्र में ) बौद्धमत तथा अन्य पंथों के अध्ययन के लिए, वलभी विश्वविद्यालय स्थापित किया । इसमें अन्य विषय भी पढ़ाये जाते थे । इसके पास बहुत बड़ा ग्रन्थालय था ।

**विक्रमशिला**—यह उत्तरी मगध में स्थित था । इसमें तिब्बती बौद्ध धर्म का अध्ययन होता था । इस विश्वविद्यालय ने अपने अनेक पण्डित धर्म-प्रचार

के लिए तिब्बत भेजे थे । तिब्बत में भारतीय संस्कृति के विस्तार में विक्रमशिला विश्वविद्यालय का बहुत योगदान है ।

**ओदान्तपुरी**—विक्रमशिला विश्वविद्यालय पालवंश के राजाओं ने खुलवाया था । उसी प्रकार, आठवीं सदी में उन्होंने पाटलिपुत्र के निकट ओदान्तपुरी में एक विशाल शिक्षा-केन्द्र स्थापित किया । यहाँ तांत्रिक साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन होता था ।

**जागदल**—यह विश्वविद्यालय थोड़े दिनों तक रहा । बंगाल के राजा रामपाल ने इसे वरेन्द्र प्रदेश में गंगा और करतोय नदी के संगम पर बनाया था ।

इन विश्वविद्यालयों ने भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखा; उसका प्रसार किया । साथ ही उन्होंने भारतीय आदर्श, जीवन-नीति अर्थात् भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार दूर-दूर के देशों में किया ।

ये गुरुकुल धर्म तथा दर्शन केन्द्र थे । औद्योगिक कलाएँ यहाँ नहीं सिखाई जाती थीं । शिल्पी-श्रेणी-संघ में ही व्यक्ति को औद्योगिक कला, कार्य तथा अनुभव द्वारा सिखाई जाती थी ।

**मुख्य दोष**—अपनी सारी उच्चता और श्रेष्ठता के बावजूद, उस काल की शिक्षा-व्यवस्था में बहुत बड़ा दोष यह था कि सामान्य जनता इन विश्वविद्यालयों का लाभ नहीं उठा पाती थी । एक ओर प्रकाण्ड विद्वत्ता के नभचुम्बी शिखर थे तो दूसरी ओर अपढ़ और निरक्षर जनता का व्यापक समुदाय था । इन विश्वविद्यालयों में औद्योगिक कलाएँ नहीं पढ़ाई जाती थीं । फलतः, सूक्ष्म बौद्धिक चिन्तन को, औद्योगिक कला के लक्ष्यों से समन्वित नहीं किया गया । फलतः हमारे यहाँ विज्ञान का सर्वाङ्गीण तथा उत्तरोत्तर विकास नहीं हो सका—विज्ञान के विकास की परम्परा हमारे यहाँ नहीं बन पाई ।

मध्ययुग तक आते-आते पुराने विश्वविद्यालय नष्ट हो गये । पाठशालाएँ मन्दिरों में कायम हुईं । शिक्षा तथा ज्ञान दोनों रूढ़ि-बद्ध हो गये । विचार-

स्वातंत्र्य नष्ट हो गया । सारा ध्यान संस्कृत की शिक्षा की ओर था । फलतः, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का व्यापक अध्ययन नहीं हो पाया ।

लोकोन्मुख शिक्षा-पद्धति के लिए, विज्ञान-प्रमुख शिक्षा-व्यवस्था के लिए भारत को आधुनिक काल के उदय की प्रतीक्षा करनी थी । सो, उसने की ।

### प्रश्न

१. नालन्दा विश्वविद्यालय पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
२. भारत के सर्वाधिक प्राचीन विश्वविद्यालय की जानकारी दीजिए ।
३. विक्रमशिला विश्वविद्यालय के महत्त्व पर प्रकाश डालिये ।
४. तत्कालीन पाठ्य-क्रमों की जानकारी दीजिए ।
५. उस समय की शिक्षा-व्यवस्था का गुण-दोष-विवेचन कीजिए ।
६. तत्कालीन विश्वविद्यालयों में कौन-कौन से विदेशी पण्डित अध्ययन के लिए आये और कौन-कौन से भारतीय पण्डित विदेशों में गये ।
७. बताइये कि इन विश्वविद्यालयों द्वारा विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास क्यों नहीं हो सका ?

## भारत में मुगलों का आधिपत्य । ८

[ भारत में बसने के उद्देश्य से मुगलों ने भारत में प्रवेश किया । उन दिनों देश में अनेकानेक शक्तिशाली मुस्लिम और राजपूत राज्य थे । प्रारंभिक मुगल शासकों को युद्ध ही युद्ध करना पड़ा । फिर भी अब तक आये हुए विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं में वे ही सर्वाधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे । भारत की युद्ध-विद्या के इतिहास में पहली बार तोपों का प्रयोग हुआ । वह बाबर द्वारा किया गया । इस काल का एक उज्ज्वल रत्न मुगल शासक न होकर अफ़ग़ान का सुल्तान शेरशाह सूरी है । मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य ग्रन्थ पद्मावत में शेरशाह के सम्बन्ध में कहा—“सेरसाहि देहली सुलतानू, चारिऊँ खराड तपै जस भानू ।”—वह भारत के महान् शासकों में से है । )

चौदहवीं सदी के अन्त में मध्य एशिया के फरगाना नामक रियासत का शासक बाबर था । वह तैमूरलंग का वंशज था । अपनी रियासत की रक्षा के लिए, उसे पास-पड़ोस की रियासतों से लड़ना पड़ता । ये रियासतें—उसी के सम्बन्धियों की थीं । उनसे तंग आकर, एक दिन अपनी सेनाओं के साथ, नया राज्य जमाने के लिए, निकल पड़ा । उसने अपनी जन्मभूमि का त्याग कर दिया । हिन्दूकुश के पर्वतों को पार कर उसने काबुल को जीत लिया । कुछ ही दिनों बाद उसने भारत की ओर प्रयाण किया ।

उन दिनों दिल्ली के अफ़ग़ान सुलतान निर्बल थे । गुजरात मालवा और बंगाल में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य थे । सन् १५२५ में उसने दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को पराजित किया और भारत में मुगल वंश की स्थापना की । मंगोल शब्द ही का बिगड़ा हुआ रूप—‘मुगल’ है ।

किन्तु, बाबर को तब तक चैन नहीं हो सकती थी जब तक वह मेवाड़ के राणा सांगा से मोर्चा न ले। राणा सांगा बहुत अनुभवी योद्धा और पराक्रमी था। सांगा की दृष्टि भी दिल्ली ही पर थी। उसके नेतृत्व में राजपूत राज्यों का एक संघ था। भारत के शक्तिशाली राज्यों में से एक मेवाड़ भी था।

युद्ध होना अनिवार्य था। दोनों पक्ष इसे समझ रहे थे। राजपूत नरेशों ने उत्साह पूर्वक राणा सांगा का साथ दिया। सन् १५२७ में सीकरी में घमासान युद्ध हुआ।

बाबर ने तोपों का प्रयोग किया। भारतीय इतिहास में तोपों के प्रयोग की यह पहली घटना थी। राजपूतों के तलवार और भाले तथा व्यक्तिगत पराक्रम किसी काम न आये। भारतीय युद्ध-विद्या कमजोर थी। मुगल युद्ध-कला अधिक विकसित थी।

राणा सांगा की पराजय के बाद, बाबर को राजपूताने पर कब्जा करने में ज्यादा देर न लगी। इसके बाद, उसने बिहार और बंगाल को भी जीत लिया और सन् १५३० तक अपनी मृत्यु के पहले, उसने सारे उत्तर भारत में अपना साम्राज्य फैला दिया।

हुमायूँ :—किन्तु, मुगल साम्राज्य को दृढ़ होने में अभी देर थी। हुमायूँ के राज्यारोहण के तुरन्त उपरान्त, अनेक प्रान्तों में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। बिहार में शेर खाँ नामक अफगान सरदार ने बगावत कर दी, जिसे दबाने के लिए हुमायूँ बिहार की ओर बढ़ा। उसका दमन करके ज्यों ही वह लौटा कि उसे खबर मिली कि गुजरात में विद्रोह हो गया है। हुमायूँ सेना सहित गुजरात की तरफ रवाना हुआ। इस बगावत से फायदा उठा कर, शेर खाँ ने फिर से अपनी ताकत बढ़ा ली। गुजरात की लड़ाई में हरा थका-हुमायूँ जब दिल्ली में थोड़ी आराम की साँस ले रहा था कि शेर खाँ ने दिल्ली पर हमला बोल दिया। हुमायूँ को दिल्ली छोड़ देनी पड़ी। वह राजस्थान होते हुये ईरान चला गया। शेर खाँ—शेरशाह सूरी के नाम से—दिल्ली के राजसिंहासन

पर बैठा। यह घटना सन् १५४० की है। शेरशाह सूरी वंशी ने सिर्फ १५ वर्षों तक राज्य किया।

**शेरशाह सूरी** :—यह सुलतान भारत के महान शासक में से है। उनमें अपने राजत्व के अल्पकाल में ही अनेक निर्माण-कार्य किये। उसने बंगाल से पंजाब तक बहुत बड़ी सड़क बनाई, उसके दोनों ओर पेड़ लगवाये, जगह-जगह सरायें बनाई, वहाँ कुये खुदवाये। इन सरायों में हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के यात्रियों के लिये रहने की व्यवस्था थी। सरायों में हिन्दूओं के लिए भोजन की अलग व्यवस्था थी और भोजन बनाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया। साथ ही, यात्रियों के जानवरों के लिए घास आदि का बन्दोबस्त किया। प्रत्येक सराय में मुसलमानों के लिये, मस्जिद भी बनाई।

राज्य शासन की मुख्य सुव्यवस्था के लिये उसने अलग-अलग महकमें बनाये। न्याय और सहिष्णुता की भावना से प्रेरित होकर, उसने हिन्दुओं को अपनी ओर मिला लिया।

देश की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिये उसने बहुत से प्रयत्न किये, जिसमें भूमि-कर-सुधार प्रमुख है। राज्य के नागरिकों की रक्षा के लिये उसने बाकायदा पुलिस विभाग का संगठन किया। अगर इस विभाग के अधिकारी-गण खून या चोरी की ठोक जाँच करके अपराधी को पकड़ न पाते तो उन्हें ही कठोर दण्ड दिया जाता।

**शेरशाह ने कहा**—“धर्म-विधियों में सर्वश्रेष्ठ विधि है—न्याय। मुसलमान राजाओं के अलावा, हिन्दू राजाओं ने भी न्याय की प्रशंसा की है”—शेरशाह ने केवल अपराधों के विरुद्ध न्याय निर्णय ही नहीं दिये; वरन् उसके अलावा, उसने सामाजिक न्याय भावना तथा सहिष्णुता भी बनाई।

शेरशाह बहुत बुद्धिमान तथा न्याय परायण शासक भी था। वह प्रजा-वत्सल भी था। उसने डाक विभाग का भी संगठन किया; साथ ही विभिन्न प्रान्तों की हलचलें जानने के लिए, संवाद-वाहक भी नियुक्त किये।

दुर्भाग्य से वह शीघ्र ही मर गया। उसका राजवंश अधिक दिनों तक नहीं चला। प्रांतीय शासक फिर से स्वतंत्र होने लगे। इन अराजकता से

फायदा उठाकर, हुमायूँ ने ईरान में संगठित सैन्य की सहायता से दिल्ली फिर से जीत लिया ।

हुमायूँ दीर्घकाल तक ईरान में रहा । वहाँ उसके सामन्त भी गये थे । जब वह वहाँ से लौटा तो ईरानी सेना और सामन्त दोनों लेता आया । फलतः हुमायूँ के शासन पद पर योग्य ईरानियों की नियुक्ति हुई । दरबार में संस्कृति का प्रभाव बढ़ता गया ।

बाबर और हुमायूँ दोनों ज्ञान प्रेमी थे । बाबर ने अपना आत्मचरित लिखा है । उसने केवल अपने गुणों का ही नहीं, दोषों तक का उल्लेख किया है । वह मुख्यतः सैनिक था । वह कुशल प्रबन्धक प्रतीत नहीं होता था । उसका पुत्र हुमायूँ भी शूरवीर था । गणित, फलित ज्योतिष, और भूगोल का वह प्रेमी था । फिर भी वह एक विशेष अर्थ में अभागा था, उसके भाइयों ने, जो बड़े-बड़े सूबेदार थे, संकट में उसकी कोई मदद नहीं की । सिवाय इसके वह अफीम भी खाता था । हुमायूँ जब अपने पुत्र अकबर को छोड़ कर मरा, उस समय पूरा साम्राज्य असुरक्षित था ।

### प्रश्न

१. भारत में बाबर की किन प्रधान राजाओं का सामना करना पड़ा ?
२. हुमायूँ के युद्धों के बारे में आप क्या जानते हैं ?
३. बाबर तथा हुमायूँ के चरित्र पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
४. शेरशाह सूरी के व्यक्तित्व और कार्य पर एक विस्तृत लेख लिखिए ।
५. टिप्पणी कीजिये ।

(अ) राणा सांगा, (ब) फरगाना ।



## राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना । ९

### अकबर महान्

[ मुगल अभ्युदय के पूर्व ही भारत के ग्रामों और नगरों में हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक सामंजस्य का वातावरण बन गया था । इस सांस्कृतिक प्रवृत्ति को अकबर ने राजनैतिक रूप दिया तथा राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना की । एक ओर राजपूतों ने मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया तो दूसरी ओर मुगल शासन के प्रधान शक्तिशाली पदों पर आसन जमा कर उन्होंने मुगल साम्राज्य की वृद्धि की । मुगल साम्राज्य की रक्षा तथा प्रसार का दायित्व बहुत कुछ राजपूतों पर आ गया था । शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का वजीरे आजम टोडरमल हुआ । इस प्रकार, इस साम्राज्य के विकास और प्रसार का श्रेय हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को है । जिस महान् व्यक्तित्व ने यह घटित करके बता दिया उसका नाम भारत के महान् शासकों में गिना जाता है । ]

भारत के सर्वश्रेष्ठ सम्राटों में अकबर की गिनती होती है । मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर ही माना जाता है ।

हुमायूँ अकबर के लिए जब राज्य छोड़कर मरा तब पूरी मुगल सल्तनत असुरक्षित थी । दिल्ली के अधिकार स वंचित अफगान राजवंश 'सूर' के उत्तराधिकारी आदिल शाह सूर के हिन्दू प्रधानमन्त्री हेमू ने सन् १५५६ में दिल्ली पर हमला किया । यह हमला उसी सन् में हुए जिस सन् में हुमायूँ की मृत्यु हुई और अकबर गद्दी पर बैठा था । उस समय अकबर की आयु केवल १४ वर्ष की थी । किन्तु, पिता के साथ उसका जो पिछला जीवन बीता था, उसमें उसे युद्ध का पर्याप्त अनुभव हो चुका था । उसके

सौभाग्य से, बैरम खाँ नामक एक कठोर हृदय वीर पुरुष मुगल सेना का अध्यक्ष था। उसने बगैर अकबर से पूछे, मुगल सेनाओं के उन प्रमुखों का, जिन्होंने शत्रु का सतर्कतापूर्वक प्रतिरोध नहीं किया था, सर अलग कर दिया। इसके फलस्वरूप, बैरम खाँ का आतंक छा गया। पानीपत की लड़ाई में, जो १५ नवम्बर सन् १५५६ में हुई, हेमू की सेना को नष्ट कर दिया गया। हेमू की मृत्यु के बाद, अगले चार साल तक बैरम खाँ ही प्रधानमन्त्री का काम करता था।

बैरम खाँ स्वामिभक्त किन्तु कठोर हृदय और जिद्दी आदमी था, इधर, अकबर ने होश संभाला। उसकी नीति कुछ और थी। फतः, अकबर और बैरम में मतभेद हुए। बैरम को निकाल दिया गया। उसका अन्त बहुत दुख-दायक हुआ।

अकबर के सामने एकदम कई सवाल थे। शेरशाह सूरी के सुप्रबन्ध की जो कीर्ति थी वह उसने सुन रखी थी। साथ ही, साम्राज्य के कौन शत्रु थे, वह उन्हें अच्छी तरह जानता था। वे दो थे—एक स्वतंत्र अफगान राज्य जो भारत में फैले हुए थे। दूसरे :—राजपूत। परिस्थिति का उसने सही-सही विश्लेषण किया था। उसे मालूम था कि बादशाह के कमजोर होते ही तरह-तरह के षड़यन्त्र और विद्रोह होने लगते हैं। सन् १५६० से १५६६ तक उसे उसका अनुभव भी हो गया।

अफगानों और मुगलों का धर्म एक था। किन्तु, वहाँ राजनैतिक स्वार्थों की टकराहट थी। राजपूत विधर्मी थे; किन्तु उनके नैतिक सद्गुणों के सम्बन्ध में उसने अपने पिता से बहुत कुछ सुन रखा था। वे वीर थे, साहसशील थे, ईमानदार थे और स्वामिभक्त थे। ये उनके जातीय गुण थे। साथ ही वे कट्टर धर्माभिमानी भी थे। अफगानों और राजपूतों की तुलना करने के बाद, अकबर ने दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तापूर्वक हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाने का निर्णय किया।

अकबर ने भारत में मुगल शासन की स्थापना करने के लिए, राजपूतों के सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया। उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित किये। सबसे पूर्व जयपुर के राजा भारमल ने अपनी कन्या का विवाह अकबर के साथ कर दिया। इसके बाद, अनेक राजाओं ने अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। अकबर ने इन राजाओं को मुगल साम्राज्य में ऊँचे-ऊँचे पद प्रदान किये और उनकी सेवाओं की सहायता से भारत के बड़े भाग की विजय की।

उधर राजपूतों की ही सहायता से उसने रणथम्भौर, चित्तौड़, गोंड़वाना, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, अहमदनगर, काश्मीर, सिन्धु, काबुल और बलुचिस्तान को अपने कब्जे में ले लिया। उसके प्रतिरोधियों में दो मुख्य हैं—एक चित्तौड़ के महाराणा प्रताप, दूसरे गोंड़वाने की रानी दुर्गावती।

**राणा प्रताप :—**राणा प्रताप एक शूरवीर योद्धा था। वह प्रचण्ड धर्माभिमानी था। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की तथा राजपूतों की पुरानी परम्परा को जारी रखा। जब चित्तौड़ छिन गया तो उसने जंगल में शरण ली। वहाँ से राणा प्रताप ने अकबर के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।

जिन हिन्दू राजाओं ने वीरतापूर्वक अकबर की शक्ति का प्रतिरोध किया उनमें मध्य प्रदेश के गढ़ामण्डला की रानी दुर्गावती उल्लेखनीय है। वह अकबर की सेनाओं से लड़ते-लड़ते मारी गई।

अन्य राजपूत राज्यों ने एक मुस्लिम सम्राट् को अपनी कन्याएँ प्रदान करना क्यों स्वीकार किया। इसका उत्तर अपनी-अपनी मनोवृत्तियों के अनुसार ही अब तक दिया गया है। किन्तु, यदि हम पूरे भारतवर्ष में फैले हुए उस सांस्कृतिक वातावरण को ध्यान में रखें, जिसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों प्रकार के रूढ़ियों की भर्त्सना की जा रही थी—साधारण पुरुषों के द्वारा नहीं, वरन् असाधारण पुरुषों के द्वारा ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने मानव-मात्र के सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिए देश में अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया तो हमारे लिये यह सोचना सहज ही हो जाता है कि राजपूत राजाओं ने देश के तत्कालीन वातावरण को देखकर ही यह कदम उठाया। किन्तु किसी ब्राह्मण पुरोहित

का यह साहस नहीं था कि वह इन राजपूतों को जात से बाहर निकले । वे इस बात को सहने के लिए तो तैयार थे कि अपने समाज का कोई पुरुष ( या स्त्री ) अन्य धर्मावलम्बी हो जाय; किन्तु इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि अन्य धर्म की कोई स्त्री या पुरुष हिन्दू समाज में से लिया जाये ।

यही कारण है कि उन हिन्दुओं को, जिन्होंने मुस्लिम स्त्रियों से संबंध रक्खा रूढ़िवादियों द्वारा तरह-तरह के कष्ट दिये गये ।

प्रसिद्ध पण्डितराज जगन्नाथ की स्त्री यवनी थी । रूढ़िवादियों ने उन्हें बहुत अधिक कष्ट दिया । एक कथा के अनुसार, पण्डित राज ( तथा उनकी यवनी स्त्री ) ने गंगा-लहरी स्रोत पढ़ते-पढ़ते गंगा की धारा में अपने प्राण विसर्जित किये । रूढ़िवादी समाज का क्रोध इसलिए था कि उसने अन्य धर्मावलम्बी स्त्री को अपने घर में स्थान दिया ।

स्वयं अकबर कट्टर मुसलमान न था । बचपने में मुल्लाओं द्वारा उसकी शिक्षा नहीं हो पायी थी । प्रखर-बुद्धि होने के अतिरिक्त वह जिज्ञासु भी था । वह ईरान रह आया था । ईरान के मुसलमान शिया मत के थे । अकबर के



अकबर

दरबार में उच्च पदों पर शिया लोग मौजूद थे । धार्मिक मतभेदों से वह खूब परिचित था । उसने फतहपुर सीकरी में एक इबादतखाना ( आराधना-गृह ) बनवाया । यहाँ वह मुल्लाओं और मौलवियों का, धार्मिक विषयों पर वादविवाद सुनता । बाद में इस इबादतखाने में वह विभिन्न धर्मों के आचार्यों को भी बुलाने लगा । अब इन सब के बीच, वाद-विवाद होने लगे । अकबर अपने विद्वान मित्र अबुल फजल तथा अबुल फैजी समेत, यह वाद-विवाद सुनता; और जितना गुनगुना होता, गुन लेता

मुल्लाओं और मौलवियों ने एक बार 'विवाह' इस प्रश्न पर बहस छेड़ी । अन्त में, यह तै नहीं हो पाया कि एक मुसलमान को कितने विवाह करने का अधिकार है । इस मसले पर अन्तिम निर्णय नहीं हो सका । तब मुल्लाओं ने अकबर से ही प्रार्थना को कि वह स्वयं इस झगड़ का तस्फिया करे ( अकबर ने न मालूम कितने ही विवाह किये थे ) ।

अकबर ने मुल्लाओं द्वारा की गई इस प्रार्थना का तुरन्त ही राजनैतिक लाभ उठा लिया । उसने एक कागज पर लिखवा लिया कि धर्म सम्बन्धी मामलों में अन्तिम निर्णय देने का अधिकार मात्र सम्राट् को है, न कि मुल्लाओं और मौलवियों को । जितने भी उपस्थित मुल्ला और मौलवी थे उन सबके दस्तखत उस पर ले लिये । परिणाम यह हुआ कि अकबर ने धर्म की शक्ति भी अर्जित कर ली ।

इस इबादतगाह में प्रत्येक गुरुवार को सभा होती थी, जिसमें हिन्दू, जैन पारसी, यहूदी ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के दो पंथ शिया और सुन्नी आदि विविध सम्प्रदायों और मार्गों के विद्वान उपस्थित होते थे । सम्राट् अकबर के सामने हिन्दूधर्म की व्याख्या करने वालों में पुरुषोत्तम तथा देवी नामक दो ब्राह्मण अधिक उल्लेखनीय हैं । देवी नामक ब्राह्मण ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इस त्रिदिव के अतिरिक्त, राम और कृष्ण जैसे अवतार और साथ ही देवी महामाया के पीछे जो आध्यात्मिक तथा दार्शनिक भावनाएँ और धारणाएँ हैं, उनकी विवेचना की । उसने अकबर को हिन्दू धर्म का उपदेश दिया । अकबर उस ब्राह्मण से बहुधा धर्म-चर्चा किया करता था । उसी प्रकार जैन मुनि हरि विजय सूरि, जिन चन्द्र, भानुचन्द्र उपाध्याय तथा मुनिराज विजय सेन सूरि अकबर के सामने जैन धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डालते थे । सन् १५७६ के बाद, एक न एक जैन मुनि बादशाह के दरबार में रहा आया । उन्हीं के धर्मोपदेशों का यह प्रभाव था कि अकबर ने कुछ निश्चित तिथियों पर पशुवध बन्द करा दिया था ।

अकबर ने पारसियों द्वारा प्राचीन ईरानी धर्म पर प्रवचन सुना। पारसी धर्मोपदेशक दस्तूर मेहरजी राणा ने अकबर को अपने धर्म की बहुत सी बातें बताई, जिससे प्रभावित होकर अकबर ने सूर्य की पूजा आरम्भ कर दी। सूर्य इरानियों के आराध्य देवता अग्नि हो का तो प्रतीक है। सिख धर्म के प्रति तो अकबर की अपार श्रद्धा थी। उस धर्म ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया था।

ईसाई धर्म से परिचय प्राप्त करने के लिए अकबर ने गोवा के पुर्तगीज पादरियों से सम्पर्क ने स्थापित किया। उन्हें अपनी राज सभा में बुलाया। किन्तु पुर्तगीज पादरियों ने मुहम्मद साहब और कुरान पर तरह-तरह के आक्षेप शुरू किये। परिणाम यह हुआ कि ईसाई मजहब से बहुत से मुसलमान नाराज हो गये।

**दीन इलाही**—अनेकानेक धर्मों को ध्यान में रखकर अकबर, ने सोचा कि एक ऐसे धर्म का विकास हो जिसमें सारे धर्मों के सार-तत्त्व समा जायें। इसलिए, उसने दीन-इलाही नामक धर्म चलाया। इस धर्म का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर एक है, अकबर उसका दूत है, मनुष्य का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने विवेक से सत्य और असत्य का निर्णय करे। दीन इलाही में किसी व्यक्ति या बात पर अन्ध-विश्वास के विरुद्ध चेतावनी दी गई है। अन्धविश्वास का स्थान-स्थान पर विरोध करते हुए, स्वतन्त्र बुद्धि पर जोर दिया गया है। दीन इलाही में पशुहिंसा को पाप समझा गया, मांस भक्षण का निषेध किया गया। अकबर के अन्तःकरण में निःसन्देह एक स्वतन्त्र शोध-बुद्धि थी।

अकबर सुबह उठते ही सबसे पहले उगते हुए सूर्य को नमस्कार करता, और उसमें यह अनुभूति उत्पन्न होती कि ईश्वरीय तेज का प्रकट रूप अग्नि है। वह अग्नि को भी दिव्य शक्ति का प्रतीक मानता।

बहुत से लोग, जो उसके दरबार में उठते बैठते थे, दीन इलाही के अनुयायी हो गये। उनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। यह सच है कि सम्राट् को प्रसन्न करने के लिए, उन्होंने दीन इलाही स्वीकार किया। यह धर्म

चला नहीं। किन्तु, उससे तत्कालीन युग की धार्मिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है।

ऐसे मुसलमान को अगर राजपूत राजाओं ने अपनी कन्याएँ दीं तो इसमें उन्होंने, जाने या अनजाने, एक महत्वपूर्ण कार्य किया। भारत की तत्कालीन सामाज-सामंजस्य प्रधान मानवतावादी वृत्तियों को ही उन्होंने प्रोत्साहन दिया भले ही उन्होंने वैसा किसी राजनैतिक हेतु से किया हो।

अकबर की स्वतंत्र बुद्धि के विकास से उसकी हिन्दू रानियों का हाथ था; साथ ही शेख मुबारक जैसे सूफियों का भी योगदान था। शेख मुबारक के दो पुत्र अबुल फजल और फैजी के विचारों का अकबर के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा।

हिन्दू स्त्रियों से विवाह करके उसने मुगल राज वंश को भारतीय बनाना चाहा। शासक-वर्ग में हिन्दू रक्त प्रवाहित किया। यदि हम उस युग के रुढ़िवाद को देखें—चाहे वह हिन्दू रुढ़िवाद हो, चाहे मुस्लिम—तो हमें यह मालूम होगा कि अकबर का यह कदम क्रांतिकारी था। क्रांतिकारी इसलिए कि भले ही हिन्दुओं को अपनी कन्याएँ देकर उन कन्याओं को मुस्लिम धर्म के हवाले पर दिया हो, किन्तु अकबर ने उन हिन्दू कन्याओं को मुसलमान नहीं बनाया, उन्हें इस्लाम कुबूल करने के लिए नहीं कहा। मुसलमान मुल्लाओं और ब्राह्मण पुरोहितों—दोनों को यह एक बड़ी चुनौती थी।

अपनी हिन्दू रानियों के लिए उसने, उनके किले के भीतर ही, तुलसी तरु, मन्दिर आदि की व्यवस्था की। यहाँ तक कि किले के अन्दर हिन्दू रानियों के निवास स्थान की स्थापत्य कला भी हिन्दू हो जाती है, मेंहराबें और कमानियों, गवाक्ष (भरोखे) और द्वार हिन्दू रूप धारण कर लेते हैं। अपनी हिन्दू रानियों को प्रसन्न करने के लिए, साथ ही अपनी हिन्दू प्रजा के निकटतर आने के लिए, अकबर स्वयं हिन्दू पोशाक धारण करता, तिलक लगाता और माला फेरता।

ध्यान में रखने की बात है कि अकबर ने जिन प्रान्तीय मुस्लिम राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था, उन राज्यों में हिन्दू-मुस्लिम-सांस्कृतिक मैत्री

घनिष्ठ हो चुकी थी। हिन्दुओं और मुसलमानों में आत्मीय संबन्ध स्थापित हो चुके थे।

इन्हीं मुस्लिम राज्यों में हिन्दुओं का सर्वाधिक उत्कर्ष हुआ था। साथ ही, शेरशाह सूरी ने अल्पकाल में ही धार्मिक सहिष्णुता का तथा प्रजा-वत्सलता का परिचय दिया था। उधर, भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप, समाज में आध्यात्मिक मानवतावाद का वातावरण उत्पन्न हो चुका था।

अकबर ने इसी परम्परा को कई कदम आगे बढ़ाना चाहा। उसके मत-विश्वास, धार्मिक संकीर्णता से विकृत नहीं हुए थे। वह खुद बे पढ़ा लिखा था किन्तु, वह उदार चिन्तकों, बुद्धिमान तर्कियों, फारसी तथा हिन्दी के कवियों और हँसोड़ किन्तु तेजस्वी बुद्धि वाले मित्रों में उठना-बैठता था। उसका परिणाम यह हुआ कि उसने तत्कालीन सामंजस्य और समन्वय की भावना को, सामाजिक और राजनैतिक वस्तुस्थिति में परिणत करना चाहा।

इन विवाह-सम्बन्धों के फलस्वरूप खास मुसलमानों के केन्द्रीय स्थानों में हिन्दुओं का प्रवेश हुआ; दुर्ग के भीतर अन्तःपुर में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के छोटे-छोटे केन्द्र बन गये। राजपूत राजाओं को शासन के सर्वोच्च पदों पर नियुक्त करके, अपने मुगल शासन-यंत्र में हिन्दुओं के प्रभाव विस्तार को प्रोत्साहन दिया। राजा टोडरमल सरीखे कार्य-दक्ष पुरुष को माल महकमा सौंपा गया। उसने शेरशाह सूरी के भूमि सुधारों को इधर-उधर परिवर्तित करके साम्राज्य भर में लागू किये। हिन्दुओं पर अकबर ने विश्वास किया, उन्हें अपने विश्वास में लिया। साम्राज्य की रक्षा का बहुत कुछ भार उसने उन्हीं पर डाल दिया। उत्तर-पश्चिम के बड़े-बड़े युद्ध अब राजपूतों को बहादुरी से लड़े जाने लगे। साथ ही, राजपूत राजाओं के राज्य को उसने कायम रहने दिया।

वह जानता था कि भारत में बहुसंख्यक हिन्दू ही हैं। उनका विश्वास प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक था। प्रांतीय मुस्लिम राज्य पहले ही से यह विश्वास प्राप्त कर चुके थे। उसने इस राजनैतिक प्रवृत्ति-प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया।



फलतः, वह सही माने में राष्ट्रीय राजतंत्र का संस्थापक था। तत्कालीन सामंजस्यवादी वातावरण को उसने पूरे भारत में राजनैतिक रूप प्रदान किया; और इस प्रकार पहली बार भारत में राष्ट्रीय साम्राज्य का उदय हुआ! हम उसे राष्ट्रीय राजतंत्र क्यों कहते हैं।

इसलिए कहते हैं कि इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार राजा केवल मुसलमानों का राजा होता है।

इस्लाम में राज्य-संचालन के भी सिद्धान्त हैं। गैर-मुस्लिमों की सत्ता या तो मुस्लिम राज्य स्वीकार नहीं करता, उसकी जानमाल की रक्षा के बदले उससे विशेष कर वसूल किया जाता है। यह कर जजिया कहलाता है। इस प्रकार, समाज दो भागों में विभक्त हो जाता है—एक मुस्लिम, दूसरा गैर-मुस्लिम !

**राष्ट्रीय राजतंत्र :—**अकबर ने हिन्दुओं पर से जजिया कर उठा दिया। इस प्रकार, नागरिकों की दो सामाजिक-राजनैतिक कोटियों को समाप्त कर दिया। अब सम्राट के सामने—हिन्दू मुस्लिम दोनों की स्थिति एक समान थी; सिर्फ मुस्लिम होने के नाते, कोई नागरिक बड़ा नहीं हो सकता—सरकार की आँखों में—इसलिए इस शासन को राष्ट्रीय शासन कहा जाता है। किन्तु केवल इसी आधार पर तत्कालीन राजतंत्र को राष्ट्रीय कहना ठीक नहीं; वह 'राष्ट्रीय' राजतंत्र इसलिए भी था कि उसमें भारतीय जनता का महत्वपूर्ण तथा प्रधान प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व होता था। वह प्रधान प्रवृत्ति थी—विभिन्न धर्मों और धर्मानुयायियों के बीच सामंजस्य तथा समन्वय की भावना तथा भारतीय जनता में उस भावना का वातावरण।

राष्ट्रीय राजतंत्र होते हुए भी, यह आधुनिक ढंग का राष्ट्रवादी राजतंत्र नहीं था। किन्तु, उसने जातीय ऐक्य के क्षेत्र में आधुनिक राष्ट्रवादी युग से अधिक सफलता प्राप्त की थी। उस राष्ट्रीय राजतंत्र के फलस्वरूप समाज-सामंजस्य का कार्य और भी आगे बढ़ा।

ऐसी स्थिति में अगर राजस्थान के राजपूत राज्य अकबर से न केवल प्रसन्न हों, वरन् मुगल साम्राज्य के उच्चपदाधिकारी बनने में गौरव और प्रतिष्ठा का अनुभव करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? सूबेदार और सेनापति, सरदार और मनसबदार बन कर, मुगल साम्राज्य के वास्तविक संरक्षण का कार्य उनके हाथ में आ गया था । वे यह खूब समझते थे कि साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि उन्हीं के सहयोग पर निर्भर है ।

जजिया कर उठाने के अतिरिक्त, अकबर ने काशी, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा आदि हिन्दू तीर्थों की यात्रा करने वालों पर जो टैक्स लगाया जाता था, वह भी उठा लिया । जजिया और तीर्थ-यात्रा कर उठा लेने का ऐतिहासिक राजनैतिक महत्त्व है । इस कदम से, राज्य का स्वरूप बदल गया । तुर्क-अफगान युग में, राज्य था—एक विशेष धर्म और उसके अनुयायियों का, किन्तु अब वह सब जातियों और धर्मों का सम्मिलित शासन था । इस अर्थ में अकबर ने भारत में राष्ट्रीय राजतंत्र का निर्माण किया ।

इस अखिल भारतीय मुगल सत्ता का प्रधान मंत्री—वजीरे आजम—राजा टोडरमल था । वह खत्री था । क्रमशः वह पदोन्नति करता गया, और अन्त में प्रधान मंत्री बन गया । उसके हाथ में वित्त तथा भूमि-व्यवस्था का भी कार्य था ।

उसके सर्वोच्च सेनाध्यक्ष थे—राजा मानसिंह और राजा भगवान दास । अफगानिस्तान जैसे मुस्लिम प्रदेश का शासन राजा मानसिंह के हाथ में था । उसी प्रकार बंगाल तथा अन्य प्रदेश के सर्वोच्च शासक भी राजपूत ही थे ।

किन्तु ध्यान रहे वह सामन्त-सभ्यता, सामन्त समाज-व्यवस्था थी । उस व्यवस्था में आधुनिक प्रकार के राष्ट्रवाद को गुञ्जाइश नहीं थी । स्वयं प्रजा अपने राजा को अर्थात् अकबर को ईश्वर का अंश मानने लगी थी । वह अब न केवल मुसलमानों का “खलीफा” हो उठा, वरन् उसने अब प्रजा की सन्तुष्टि के लिए “जगद्गुरु” की उपाधि भी धारण कर ली । लोगों में यह भावना हो उठी कि जिस प्रकार प्रातःकाल सूर्य के दर्शन किये जाते हैं उसी प्रकार सुबह उठकर सम्राट् के दर्शन होना चाहिए । लोग इसे अपना पुण्य कर्तव्य समझते ।

बहुत से लोग दुर्ग के भरोखे के नीचे, मैदान के सम्राट् के दर्शन के लिए एकत्र होते। अकबर स्वयं अपने राज-प्रासाद के खुले गवाक्ष में, सूर्योदय के दो घड़ी बाद, जनता को दर्शन देता।

अकबर के समय ऐसा सम्प्रदाय ही उत्पन्न हो गया था जो सम्राट् के दर्शन के बिना भोजन ग्रहण नहीं करता था, न पानी ही पीता था। इस सम्प्रदाय को “दर्शनिया” सम्प्रदाय कहते थे। सच बात तो यह थी कि भारत की भावुक जनता ने सम्राट् के अतुल्य प्रताप को देखकर उसमें देवत्व की भावना कर ली थी। यहाँ तक कि आगे चलकर जहाँगीर और शाहजहाँ अपने को “ईश्वरीय” अंश मानने लगे थे—जहाँगीर की रानी मुमताज महल ने “जगत्-गुसाँइनी” की उपाधि धारण करली थी।

वह सामन्त-सभ्यता, सामन्त-समाज-व्यवस्था थी। उसके अन्तर्गत, सम्राट् सर्वोच्च पुरुष थे, सारे राजनैतिक अधिकार उसके पास थे। वह निरंकुश, स्वेच्छा-चारी, सार्वभौम अधिपति था।

जिस प्रकार अफगान-युग में ‘सत्य-पीर’ नामक समुदाय का उदय हुआ—जिसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों का सामंजस्य किया गया था, उसी प्रकार मुगल-काल का सतनामी और नारायणी समुदाय उत्पन्न हुए। नारायणी सम्प्रदाय में हिन्दू और मुस्लिम दोनों थे। वे पूर्व की ओर मुँह किये दिन में पाँच बार प्रार्थना करते थे। ईश्वर के अनेक नामों में ‘अल्लाह’ का भी समावेश करते थे। मुदो को जलाने के बजाय, जमीन में गाड़ते थे।

इन युग की समन्वय-सामंजस्य-भावना का मूर्त प्रतीक है—एक साधक, जिसका नाम था प्राणनाथ। प्राणनाथ के अनुयायी दोनों थे—हिन्दू और मुसलमान। महत्त्व की बात यह है कि उसके सम्प्रदाय में दीक्षित होने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ही पंगत में भोजन के लिए बैठना पड़ता था। प्राणनाथ कहता था—“सबका धर्म और ईमान एक होना चाहिए”। उसने मूर्ति-पूजा, जातिवाद और ब्राह्मण-प्रभुत्व के विरुद्ध एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया था।

उधर अकबर स्वयं खलीफा हो उठा था। उसने सन् १५०० ई० में नमाज में हजरत मुहम्मद साहब का उल्लेख करने को मनाही कर दी। रमजान के महीने के उपवास का भी उसने निषेध किया। बादशाह के सामने सिज्दा (दण्डवत्) करने का हुक्म दिया। गो-हत्या बन्द कर दी।

**समाज-सुधार**—अकबर ने नव-जात बालिकाओं की हत्या का रिवाज बन्द कर दिया। सती-प्रथा पर भी रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्वेच्छा से तो कोई स्त्री सती हो सकती थी, किन्तु उस पर जबरदस्ती नहीं की जा सकती थी। राजा भगवान दास के एक सम्बन्धी स्त्री को जबरदस्ती सती बनाया जाने लगा तुरन्त ही उसने एक अश्वारोही दल भिजवा कर उसे रुकवा दिया।

अकबर का नाम लेते ही हमारे सामने ये व्यक्ति सामने आते हैं—राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, अबुल फजल, अबुल फैजी और निजामुद्दीन। उसके दरबारियों में ये सर्वश्रेष्ठ थे। इसके अतिरिक्त उसका परम सखा था—वीरवल प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन उसका दरबारी था, और साथ ही साथ इतिहास लेखक बदायूनी का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता।

अकबर की नीति के तीन मुख्य सिद्धान्त थे :—

(अ) राज्य-व्यवस्था को किसी एक ही धर्म या जाति के एकाधिकार में न रखना। एक ही धर्म या जाति की शक्ति के आधार पर राज्य-व्यवस्था खड़ी न करना अर्थात् राजतंत्र को राष्ट्रीय-स्वरूप देना और उसका निर्वाह करना।

(ब) हिन्दुओं की सहानुभूति, समर्थन और सहयोग प्राप्त करना।

(स) सम्पूर्ण भारत पर साम्राज्य स्थापित करके उसे एक राजनैतिक इकाई बना देना।

## प्रश्न

१. अकबर को प्रारम्भ में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ?
२. अकबर की राजनैतिक सूझ-बूझ पर एक लेख लिखिये।
३. धर्म के सम्बन्ध में अकबर ने क्या रुख अपनाया ?

४. “अकबर ने राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना की” इस मत का स्पष्टी-  
कारण कीजिये ।
५. हिन्दुओं के प्रति अकबर ने कौन-सी नीति अंगीकार की ? उदाहरण  
सहित उत्तर दीजिये ।
६. अकबर ने अपने काल की किस प्रवृत्ति को अपनाया ?
७. अकबर के व्यक्तित्व पर एक लेख लिखिये ।
८. राजपूत राजाओं ने मुस्लिम आधिपत्य स्वीकार कर देश की किन  
सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया ?
९. क्या अकबर सचमुच कट्टर मुसलमान था ? अगर नहीं था तो कट्टर  
इस्लाम के प्रतिकूल उसने कौन से कार्य किये ?
१०. तत्कालीन ऐसे सम्प्रदायों का विवरण दीजिये, जिनमें हिन्दू-मुस्लिम  
एकता प्रतिपादित थी ।
११. टिप्पणी कीजिये :—  
(अ) “जगद् गुरु” अकबर, (ब) दर्शनिया सम्प्रदाय, (स) नारायणी  
सम्प्रदाय, (द) प्राणनाथ, (ज) टोडरमल ।

## मध्ययुगीन सांस्कृतिक अभ्युत्थान । १०

### मानव-सामंजस्य की नवीन प्रक्रियाएँ

[ प्रारम्भिक सदियों में मुस्लिम तत्व विदेशी ही रहे, किन्तु धीरे-धीरे उनका भारतीय-करण होता गया। एक ओर संकीर्णतावादी प्रवृत्ति तो दूसरी ओर उदारवादी प्रवृत्ति इन दोनों के बीच संघर्ष में, उदार आदान-प्रदान ही की विजय होती गई। इस्लाम का संस्पर्श पाकर, जन चेतना जाग उठी। भक्ति-आन्दोलन देश भर में लहराने लगा। पहुँचे हुए साधुओं ने सामान्य मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करनी चाही। निम्न समझी जाने वाली जातियों में से महान् साधु और कवि उत्पन्न हुए—वे हिन्दू जन-साधारण और मुस्लिम जन-साधारण दोनों के श्रद्धास्पद बने। भारत के इतिहास में पहली बार, निम्न जनता ने अपने आपको प्रस्थापित करने का उद्योग किया—तत्कालीन सांस्कृतिक—सामाजिक समस्याओं को हल करना चाहा। हिन्दू जनता और मुस्लिम जनता पास-पास आ गयी। प्रान्तीय मुस्लिम शासकों ने इस एकता-आन्दोलन में समय-समय पर भाग लिया। मानव मात्र की एकता के भाव जाति और धर्म की दीवारें तोड़ने लगे। भारत के इस आध्यात्मिक मानवीय समन्वय युग ने महान् पुरुषों को उत्पन्न किया।

### इस्लाम का भारतीय संस्कृति से, सम्पर्क-तत्कालीन समस्याएँ

विदेशी मुस्लिम आक्रामक भारत में बसने के इरादे से आये। गुरु की सदियों में, निःसंदेह, वे विदेशी ही रहे। किन्तु, इन सदियों में भी, शासक श्रेणी में भारतीय तत्त्व घुसने लगे। अलाउद्दीन खिलजी के अधीन मलिक काफूर भारतीय मुसलमान ही था, गुजरात का सुलतान मुसलमान होने के पहले

तक्षक जाति का हिन्दू ही था। हसन गंगू, जिसने दिल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनों में, दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना की, हिन्दू ही से मुसलमान हुआ था। दूसरे शब्दों में, शासक-श्रेणी में भारतीय तत्त्व घुसते जा रहे थे।

दिल्ली की अफगान सल्तनत में बड़े राजकर्मचारी भले ही मुसलमान हों, हिन्दुओं के बिना उनका काम नहीं चल सकता था। छोटे अधिकारी और साधारण राजकर्मचारी हिन्दू ही थे। इन हिन्दू कर्मचारियों के सहयोग से ही भूमि-कर तथा अन्य कर वसूल किये जाते थे। इस प्रकार, मुस्लिम जन-साधारण तथा हिन्दू जन-साधारण में सम्पर्क होता जाता था, जो कालान्तर में और गहरा हो गया।

सल्तनत के ह्रास-काल के समय चौदहवीं सदी के अन्तिम चरणों में जिन स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों का अभ्युदय हुआ, उनमें हिन्दू और मुसलमान और भी पास-पास आ गये। न केवल ऊँचे ओहदों पर हिन्दुओं को नियुक्तियाँ होतीं वरन् शासन-संचालन के काम भी उनके हवाले कर दिये जाते। मालवे में माण्डू के सुल्तान, चंदेरी के राजा मेदिनी राय को और उनके चित्रों को महत्त्वपूर्ण अधिकार देकर रखे थे। बंगाल के सुल्तान हुसैनशाह ने न मालूम कितने ही हिन्दुओं पर राज-काज चलाने की जिम्मेदारी सौंपी। उसके उच्च पदाधिकारियों में सनातन, पुरन्दर तथा रूप नामक व्यक्ति अधिक प्रसिद्ध हैं।

मुस्लिम शासक हिन्दू मन्दिरों और समाधियों के लिए दान देते। बिहार के मुहम्मद शाह नामक एक जागीरदार ने अपने जागीर का एक मुख्य भाग बौद्ध गया के मन्दिरों को दे रखा था। काश्मीर का सुल्तान जैनुल आबदीन शारदा देवी और अमरनाथ के मन्दिर में दर्शनार्थ जाया करता था। उसने यात्रियों के लिए अनेक विश्रामस्थल भी बनाये थे। मुहम्मद तुगलक जैसे सुल्तान हिन्दू योगियों और साधुओं के पास अपनी आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति के हेतु जाने लगे। इस बात का उल्लेख है कि राजपूतों की देखा-देखी मुसलमानों ने भी जौहर प्रथा अपना ली। भटनेर के मुस्लिम सूबेदार कमालुद्दीन और उसके अनुयायियों ने जब यह देखा कि तैमूरलंग को सेनाएँ अब दुर्ग को नष्ट कर देंगी तो उनको और उसके अनुयायियों की स्त्रियों ने 'जौहर' किया (चिता

में कूद कर नष्ट हो गईं ) और वह सूबेदार तथा उसके अनुयायी तैमूरलंग से लड़ते-लड़ते मारे गये । हिन्दू पगड़ी मुसलमानों में लोकप्रिय हो गई । मुस्लिम स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनने लगीं । इसी प्रकार हिन्दुओं ने भी मुस्लिम पोशाक अपना ली ।

यही क्यों, बीजापुर के मुस्लिम दरबार में राज-काज मराठी भाषा में चलता रहा । बीजापुर के सुलतान आदिलशाह कहलाते थे । इब्राहिम आदिलशाह इतना विद्वान् और प्रजावत्सल था कि उसकी प्रजा उसे 'जगद्गुरु' कह कर पुकारती थी । बहमनी सल्तनत भी हिन्दुओं को राज-काज में खींचती । उधर, विजय नगर के राज्य में कई सेनाध्यक्ष मुसलमान थे । फौज में मुस्लिम सिपाही तो रहते ही थे ।

भारत में मुस्लिम साम्राज्य की दृढ़ स्थापना के पहले ही, मुस्लिम फकीर हमारे देश में आ चुके थे विशेष कर सूफी । मुस्लिम देशों में, सूफी साधुओं और फकीरों को भी काफिर समझा जाता था । फलतः बहुत से फकीर भारत की ओर मूड़ने लगे ।

ग्यारहवीं सदी में मुस्लिम राजवंश की स्थापना इस देश में नहीं हुई थी । मुस्लिम फकीरों और पीरों को राजनैतिक शक्ति का सहारा प्राप्त न था । किन्तु उनका चरित्र-बल ऊँचा था । उनके सिद्धान्त, उपनिषद् तथा वेदान्त से मिलते-जुलते थे । ग्यारहवीं सदी में शेख इस्माईल और बारहवीं सदी के प्रथम चरणों में नूर सतागर ईरानी ने शूद्र जातियों को मुसलमान बनाया । ये जातियाँ मुसलमान तो हो गईं, किन्तु अपनी प्राचीन धर्म-प्रवृत्तियों और संस्कारों को न भूल सकीं ।

ये जातियाँ गरीब थीं । इस लिए गरीब हिन्दुओं से जल्दी घुल-मिल जातीं । एक गरीब दूसरे गरीब की भावनायें जल्दी समझ सकता था । इस्लाम ने ऐसी ही एक जाति—योगी जाति—को जो जुगी भी कहलाती थी, अपने में दीक्षित कर लिया । एक जमाने में जो, वस्तुतः योगी थे, उन्होंने बाद में गृहस्थाश्रम ग्रहण कर लिया था । इसलिए वे योग शूद्र जाति के अन्तर्गत हो गये । बाद



में ऐसी ही 'जुगो' नामक शूद्र जाति ने जब इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया तो उन पर इस्लाम के संस्कार कम और योगी जाति के संस्कार अधिक थे। कबीर ऐसी ही एक शूद्र जाति के थे, जिन पर योग के प्राचीन संस्कार शेष थे। संक्षेप में, मुस्लिम जन-साधारण का हिन्दू जन-साधारण से अधिकाधिक गहरा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित होता गया। निम्न दरिद्र जनता के स्तर पर, यह परस्पर सम्पर्क और सम्बन्ध ज्यादा गहरा और अधिक आत्मीय था।

किन्तु जहाँ तक समाज के सर्वोच्च वर्गों का प्रश्न है, वहाँ उनमें टकरा-हट होना ही स्वाभाविक था। विशेषकर वहाँ जहाँ एक ने स्वतंत्रता खो दी हो और दूसरे ने अपना शसन जमा लिया हो। मुस्लिम शासक और उनके उच्च राजकर्मचारी तथा सेनाध्यक्ष, धर्म के नाम पर, राजनैतिक स्वार्थ तथा आर्थिक लोभ को तृप्त कर रहे थे। बहुत बार मुस्लिम सल्तनत में, धर्म की भावना को उभाड़ा जाता और मुस्लिम सामन्तों को भूख को, हिन्दू सामन्तों के विनाश द्वारा, धर्म के नाम पर, तृप्त किया जाता। इस्लाम ने, या कहिये उसके व्याख्याताओं अर्थात् धर्माचार्य मुल्लाओं ने, सुलतानों को छूट दे रखी थी, और क़ाफ़िर को मुसलमान बनाना पवित्र कार्य है यह तमाशा रिया गया था। हिन्दू जाति की संस्कृति प्राचीन थी, उनमें धर्म-गौरव की भावना थी, उनके पास ज्ञान था अगर उनके पास कोई चीज नहीं थी तो वह राजनैतिक शक्ति नहीं थी; किन्तु उसे प्राप्त करने की वे लगातार कोशिश करते जाते थे।

मुस्लिम सामन्त शासक थे, हिन्दू सज़ता और हिन्दू सामन्त शासित थे। बहुत बार मुस्लिम सामन्तों ने हिन्दुओं पर आत्याचारों का उग्र अमानुषिक रूप धारण कर लिया यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

किन्तु इस तथ्य को उत्पन्न करने वाला मूल कारण यह है कि ये लोग, जो मध्य-एशिया से आये थे, भले ही सभ्य कहलाये, वे वस्तुतः सभ्य नहीं थे; इनके अंग-अंग में, उनके कण-कण में, घुमक्कड़, युद्ध-व्यवसायी जीवन का खून बहता था। जब ये मध्य एशिया तथा पूर्वी एशिया के घास के मैदानों में घूमते-फिरते थे, यही लोग बौद्ध बना दिये गये थे। अशोक के उपदेशों ने और

कनिष्क के धर्म-प्रचार ने और बौद्ध भिक्षुओं के सत्संग ने उन्हें केवल ऊपरी तौर पर और बाहरी ढंग से सभ्य बना दिया था। जब ये पश्चिमी एशिया में मार-काट मचाते हुए, इस्लाम के सम्पर्क में आये तो अपना पूर्वतर बौद्ध धर्म भूल गये और झट से मुस्लिम बन गये।

एक विशेष देश, काल और परिस्थिति में, अरब जाति के एकीकरण के हेतु, हजरत मुहम्मद ने 'जिहाद' धर्म-युद्ध को महत्वपूर्ण माना था। जिन-जिन धर्मों से मुहम्मद साहब का परिचय था, उन धर्मों के ऋषियों को उन्होंने पैगम्बर भी मान लिया था।

प्रत्येक देश और काल में मानव-जाति ने एक साथ दो विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रकट की हैं—(१) संकीर्णतावादी प्रवृत्ति, (२) दूसरी उदार मतवादी प्रवृत्ति। इस्लाम के भीतर ही, खास कुरान को मानने वाले, किन्तु ईश्वर-प्रेम के नशे में मस्त करने वाले सूफी साधुओं को फाँसी की सजा मिली है। मुल्लाओं और सुलतानों द्वारा भी वे काफिर कहे गये।

जब ये तुर्क जातियाँ मुसलमान हुईं तो उन्हें संकीर्णतावादी प्रवृत्ति अपने अनुकूल प्रतीत हुई। मुस्लिम धर्माचार्यों का प्रभाव भी कुछ ऐसा था जो जिससे ये प्रवृत्तियाँ दृढ़ हुईं। अब तुर्क जातियों के पुराने खूँखारपने कि एक धार्मिक आधार भी मिल गया। राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों को पूरा करने के लिए अब धर्म का जोश दिलाया जाने लगा। धर्माचार्यों (मुल्लाओं) की बन आई। लुटेरापन वीरता समझी जाने लगी। जिस लुटेरेपन को हमने अन्य विदेशी जातियों—जैसे शकों और हूणों में देखा—वही अब और भी भयानक होकर, उन्हीं हूणों और शकों की नई मुस्लिम सन्तानों में देखा गया। ये तुर्क ठीक उन्हीं मानव-जातियों के भाग थे, जिन्होंने पूर्वी एशिया से मार-काट मचाते हुए, पूर्वी यूरोप के मैदानों पर धावा मारा था।

मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ने वाले ये खूँखार लोग, लोभ और राजनैतिक स्वार्थ के कारण, धर्म के नाम पर, अपने अनुयायियों को जोश दिलाते थे। अगर ये लूटमार न मचायें तो अपने सिपाहियों को पैसा नहीं दे सकते थे, फौज

का खर्च नहीं उठा सकते थे। उसे पैसा दिलाने के लिए, धर्म और आर्थिक आवश्यकता दोनों की पूर्ति आवश्यक थी। इसलिए, युद्ध एक व्यवसाय हो गया था—राजपूत क्षत्रियों के लिए भी युद्ध एक व्यवसाय ही था।

भारत में भी, अति प्राचीन काल से ही, युद्ध-व्यवसायी जाति और उनका पृष्ठ-पोषण करने वाली पुरोहित जाति वर्तमान थी। इसलिए, एक ओर अनवरत युद्ध होते रहते थे और कोई केन्द्रीय शक्ति अधिक दिनों तक नहीं टिक पाती थी तो दूसरी ओर पुरोहित जाति अपनी धार्मिक विधियों द्वारा युद्ध-व्यवसायियों को बढ़ावा देती रहती थी। भारत सुसभ्य और सुसंस्कृत देश होने के फलस्वरूप, धर्म-युद्ध और युद्ध-नियम, युद्ध-व्रन्दियों के प्रति मानवीय व्यवहार, शत्रुओं के प्रति सद्भावनापूर्ण व्यवहार तथा क्षमा, दया और करुणा का सामाजिक और सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक महत्त्व प्रतिपादन किया गया था।

फिर भी भारत में पहले ही से एक विशाल युद्ध-व्यवसायी जाति के प्राधान्य के फलस्वरूप, युद्ध होते ही रहते थे, यहाँ तक कि यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि लड़ाई के मैदान में लड़ते हुए मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है। अन्तर यही था कि भारतीय युद्ध-व्यवसायी वर्ग को अर्ध-सभ्य, खूंखार युद्ध-व्यवसायी जाति से मुकाबला करना पड़ा, जिनकी युद्ध-पद्धति अलग थी। वे आतंक उत्पन्न करके, अराजकता मचा कर, अपनी नृशंसता की धाक पैदा करके और फिर धर्म का नाम लेकर, लड़ाई के मैदान में उतरते थे। वे विदेशी थे, यहाँ नये आये थे, भयोत्पादन उनका प्रमुख अस्त्र था।

किन्तु, क्रमशः, भारत की जलवायु ने उन्हें बदलना शुरू किया। उन्होंने यहाँ की अर्थ-व्यवस्था में दखल नहीं दिया। कृषि और वस्तुओं के उत्पादन के लिए, वे भारतीयों पर ही निर्भर थे। यह आवश्यक था कि भारतीय जनता का एक भाग उनका अपना हो। इसीलिए, एक ओर उनके धर्म प्रचारक शूद्र जातियों को मुसलमान बनाते जाते तो दूसरी ओर उच्च वर्गीय हिन्दू, आतंक और लोभ के अभिभूत होकर, उनका धर्म स्वीकार कर लेते।

शुरू-शुरू में मुस्लिम शासक वर्ग विदेशी था, यद्यपि उसमें भी भारतीय तत्त्व घुसते जा रहे थे। ऐसी विदेशी शक्ति आतंक द्वारा ही सुसभ्य और गर्वपूर्ण जाति शासन कर सकती थी। फलतः, उसके नृशंस, आतंक और बर्बर कृत्यों की स्मृतियाँ हिन्दू जाति में सदा जोविन रहीं। किन्तु क्रमशः धर्माभिमानि हिन्दू जाति उनके सम्पर्क में आकर उन्हें ज्यादा समझने लगी। मुस्लिम शासक वर्ग से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने लगे; और साथ ही भारतीय भावों व विचारों का उन पर प्रभाव भी पड़ने लगा। इस प्रकार, मुस्लिम शासक वर्ग में ही दो प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं। एक—उदारमतवादी प्रवृत्ति; दूसरे—संकीर्णतावादी इन दोनों प्रवृत्तियों का कभी मेल नहीं हो सकता।

हिन्दू सामन्त-सभ्यता में भी ये दो प्रवृत्तियाँ प्रकट हुईं। एक प्रवृत्ति; भारतीय धर्म के नाम पर, रूढ़ि और जातिवादी संकीर्ण दृष्टिकोण को ही धर्म मानती हुई आगे बढ़ी।

दूसरी ओर, मानव मात्र के लिए ऐसे सामान्य धर्म की तलाश हुई, जिस पर हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र—सब अपने जातीय भेद-भाव भूल कर—ईश्वर-प्रेम में मस्त होकर, उचित मानव-सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

मानव-मात्र के लिये सर्व सामान्य धर्म की आवश्यकता पर जोर देने वाले लोग—समाज के निचले स्तर से निकले—जहाँ हिन्दू-जन-साधारण और मुस्लिम धर्म साधारण की घनिष्ठता थी। निर्गुण-सम्प्रदाय के लोग और सूफी इस प्रवृत्ति के समर्थक थे।

इसके विरुद्ध, ब्राह्मण प्राधान्य का आग्रही, कर्मकाण्ड प्रधान, जाति-व्यवस्था प्रधान हिन्दू धर्म, अधिक से अधिक कट्टर होता चला गया। वेदान्त और ईश्वर में आस्था रखने वाले ब्राह्मण वर्ग के लिए, जातीय और उपजातीय नियम ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत थे। दक्षिण भारत में हिन्दू सामन्त शासक वर्ग का एक भाग होने से ब्राह्मणों की बन आई। फलतः वहाँ कट्टरपन ज्यादा से ज्यादा बढ़ता गया।

आज दक्षिण भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या जोरदार है। इस समस्या का सूत्रपात प्राचीन काल में ही हुआ; किन्तु मध्ययुग में वह जोर पकड़ गई। यह इसलिए हुआ कि भक्ति-आन्दोलन के अन्तर्गत साधु और फकीर निचली जातियों में से पैदा होने लगे—ऐसी जातियों में से, जिन्हें शूद्र समझा जाता था। फलतः दक्षिण भारत के इन भक्तों को, अपने समाज द्वारा तरह-तरह का उत्पीड़न सहन करना पड़ा। ये शूद्र सन्त, जाति-भेद से परे, सामान्य मानव-धर्म में विश्वास करते थे और उस आधार पर अखिल मानव-जाति की एकता उत्पन्न करना चाहते थे। यही कारण है कि कबीर को पंडित और मुल्ला दोनों को डाँटना पड़ा और दोनों के अन्धविश्वासों की आलोचना करनी पड़ी। महत्त्व की बात यह है कि यह आवाज निचली वर्गों से उठी थी—चाहे वह हिन्दू हो, चाहे मुस्लिम। वैसे, बौद्ध और जैन साधु-सन्त, अति प्राचीन काल में, शील-सदाचार, प्रेम और करुणा पर जोर देते हुए, जातिवाद का विरोध कर चुके थे। किन्तु, अब नई ऐतिहासिक पार्श्वभूमि में, इस पुकार से नया महत्त्व धारण कर लिया। नाथ-सम्प्रदाय वालों ने ग्यारहवीं सदी में ही, उत्तर-पश्चिम भारत में, ऐसे विचारों का प्रचार आरम्भ कर दिया था। निर्गुणी सन्तों ने दक्षिण और उत्तर भारत में इसी ढंग का प्रचार किया। दक्षिण भारत के लिंगायत सम्प्रदाय ने, महाराष्ट्र के महानुभाव पन्थ ने इसी धर्म नीति का अधिक से अधिक प्रचार किया; और उनके इस मार्ग का, इस दृष्टि का विरोध भी पुरोहित वर्ग द्वारा खूब ही हुआ।

जब धर्म और ईश्वर के नाम पर, परस्पर-घृणा का प्रचार किया जा सकता था तो धर्म और ईश्वर के नाम पर ही, मानव-मात्र की एकता और प्रेम का प्रचार भी किया जा सकता था। इसमें क्या आश्चर्य है कि इसीलिए बहुत से हिन्दू सूफी हो गये और बहुत से मुसलमान कृष्ण के भक्त हुए; न मालूम कितने ही मुसलमान और अछूत, नानक और कबीर के अनुगामी हुए। राजा भरथरी के गीत गाते हुए न मालूम कितने ही मुस्लिम फकीर भारतीयों के श्रद्धा-भाजन हुए।

चौदहवीं सदी के अन्त में, हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक मैत्री और एकता के वातावरण में, यदि प्रान्तीय सुलतानशाहियों के अन्तर्गत और राजशाहियों के अन्तर्गत परस्पर विश्वास उत्पन्न होकर अब तक विधर्मी समझे जाने वाले लोग आत्मीय जैसे लगने लगें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

आज भारत में राजनैतिक स्वर्थों की पूर्ति करने के लिए जब जातिवाद और प्रादेशिकतावाद, सिर ताने खड़ा हुआ है; उन दिनों के सन्तों और फकीरों, पहुँचे हुए कवियों और सूफियों का नाम स्मरण करके हृदय पवित्र हो उठता है—क्योंकि उन्होंने जाति, वर्ण और प्रदेश से ऊपर उठकर, मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया था ।

इस वातावरण में साँस लेने वाले मुस्लिम और हिन्दू सामन्त भी प्रभावित हुए बिना न रह सके । बंगाल के सुलतान हुसैनशाह ( १४६३-१५१८ ) ने 'सत्यपीर' नामक सम्प्रदाय की स्थापना की । 'सत्यपीर'—देवता का नाम है । इस देवता की उपासना हिन्दू और मुसलमान दोनों करते । आगे चलकर, पंद्रहवीं सदी में सतनामी और नारायणी नामक सम्प्रदायों का विकास हुआ, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए ।

संक्षेप में मुगल काल तक आते-आते, हिन्दू-मुस्लिम जनता की सांस्कृतिक मैत्री और मानवादश का वातावरण बनता जा रहा था । महान् मुगल सम्राट् अकबर को यह वातावरण पहले ही से मौजूद मिला । उसने उसे राजनैतिक सामाजिक वास्तविकता में परिणित करना चाहा ।

यह तो सम्प्रदायों की बात हुई । मुस्लिम साधु-सन्तों ने वेदान्त और वैष्णव धर्म की बहुत सी बातें स्वीकार कर ली । इस्लाम की सूफी साधना में योग मार्ग ने प्रवेश किया । मुस्लिम साधु-सन्तों के प्रति हिन्दू जनता की, हिन्दुओं की आस्था बढ़ गई । दोनों समुदायों में सामन्जस्य और सहयोग की भावना के फल स्वरूप, हिन्दू मनःस्थिति और मनीषा में परिवर्तन हो गया । हिन्दू धर्म, हिन्दू कला और हिन्दू ज्ञान-विज्ञान में मुस्लिम तत्त्वों ने प्रवेश किया । ईश्वर-प्रेम और

मानव-प्रेम, दोनों समाजों को एक करने लगा । पीरो और फकीरों को हिन्दू अपना समझते ।

उनकी कब्रों पर हिन्दू मिठाइयाँ चढ़ाते और कुरान के पाठ का श्रवण करते ! वे कुरान को भी देववाणी के समान मानने लगे । उधर, मुसलमान कवि भारतीय भाषाओं में कृष्ण भक्ति प्रकट करने लगे । हिन्दू अब अपने घरों में, जीवन में बुरे प्रभावों से बचने के लिए, अपशकुनों से बचने के लिए, कुरान की किताब रखने लगे, अपने घर में मुसलमानों को भोजन कराने लगे । पंजाब के अब्दुल कादिल जिलानी, बहराइच के सैयद सालार महमूद, रावल पिण्डी के बहुत से ब्राह्मण इनके भक्त दोनों जातियों के लोग थे । अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के सैकड़ों उपासक हिन्दू थे । उसी प्रकार, बंगाल प्रदेश में मुसलमान लोग हिन्दुओं की शीतला माता, काली माता, धर्मराज और बैद्यनाथ नामक देवी देवताओं की मूर्तियों की पूजा करने लगे, यद्यपि स्वयं उनका धर्म मूर्ति-पूजा का विरोधक था । उसी प्रकार, मुसलमानों ने अपने नये देवताओं की भी कल्पना की जैसे नदियों का देवता ख्वाजा खिज़्र अथवा सिंह-वाहिनी वन देवी और उसका प्रेमी और अंगरक्षक जिन्दा गाजी । ये नवीनतम मुस्लिम देवता थे । हमने एक दूसरे की कुरीतियाँ भी लीं । हिन्दू स्त्रियाँ पर्दा करने लगीं । मुसलमानों में भी जाति व्यवस्था उत्पन्न हो गई । धार्मिक उत्सवों का भी आदान-प्रदान हुआ । हमारे यहाँ की शिवरात्रि के अनुसार वहाँ 'शबे बरात' हो गई । हमारे यहाँ आरती करते और तो उनके यहाँ "उतारा" उतारते ।

इस्लाम में भक्ति-भावना का उदय हुआ । उसमें कोमलता आ गई । रसाद्र्शता उत्पन्न हुई । राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होने लगे । हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच में अन्तर्जातीय प्रणय सम्बन्ध के उदाहरण सामने आये । हिन्दू, मुसलमान प्रेमिकाओं को अपने यहाँ रखने लगे । प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री पण्डित राज जगन्नाथ की स्त्री मुसलमान थी यह लोक श्रुति है । इस प्रकार के सम्बन्ध, हिन्दू और मुस्लिम सामन्तों के बीच जो हुए होंगे सो हुये होंगे ही, एक बात निश्चित है कि सामान्य हिन्दू-

मुस्लिम जनता के बीच ऐसे सम्बन्ध पुराने जमाने में होते रहते थे। अकबर ने इस प्रकार के सम्बन्ध जो राजपूत घरानों से स्थापित किये थे, असल में भारतीय जनता में किसी न किसी रूप में पहले ही से विद्यमान थे। राजनैतिक क्षेत्र में, जिस प्रकार हिन्दू राजा मुसलमानों के माण्डलिक हो उठे थे, उसी प्रकार हिन्दू राजाओं के यहाँ भी मुस्लिम नवाब, मुस्लिम जागीरदार और सरदार भी रहे आये।

भारतीय जनता, अपने ढंग से, सामाजिक संश्लेषण करती जा रही थी। हिन्दुओं का मुसलमानों से और मुसलमानों का हिन्दुओं से प्रेम-सम्बन्ध बनता जा रहा था। किन्तु औरंगजेब सरोखे धर्मान्धों की प्रवृत्ति और शक्ति कम न थी। स्वयं मुगल दरबार में ही एक ओर शाहजहाँ का एक पुत्र द्वारा उस समय की उदार मतवाली 'प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता था तो उसी का भाई औरंगजेब उसके विरुद्ध संकीर्णतावादी प्रवृत्ति का ये दोनों परस्पर-संघर्षशील प्रवृत्तियाँ हिन्दू समाज में भी काफी थीं।

ये प्रवृत्तियाँ आज भी हैं, जिसके फलस्वरूप भारत में सामाजिक संस्कृति का विकास नहीं हो पाता।

## आर्थिक सामाजिक दशा

हम पहले ही कह चुके हैं कि युद्ध-व्यवसायी वर्ग या जाति के लिए युद्ध लगभग अनिवार्य होता है। यदि भगड़ने का कारण न मिले तो खोज लिया जाता है। इसलिए, राज्य-विस्तार करते जाना यानी कि वैमनस्य, शत्रुत्व और संघर्ष में लगे रहना लगभग एक प्राकृतिक नियम हो जाता है। यह विशेषकर तब होता है जब कि राज्यों का संचालन युद्ध-व्यवसायी जाति या वर्ग ही कर रहा हो और शेष जनता सो रही हो।

लूट से सेना का खर्च चलाने की प्रवृत्ति प्राचीनतम काल से लेकर हुए, मंगोल, तुर्क और मराठों तक में विद्यमान रही। ऐसे समय, धन की लालच से साहसी वीर लोग सेना में भरती हो जाते। दिल्ली सल्तनत के युग में, स्वतंत्र राज्यों को जीत कर लूट द्वारा सेना का खर्च चलाने की प्रवृत्ति खूब ही थी।



फलतः, अफगान सल्तनत ने आर्थिक अवस्था के सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

किन्तु साथ ही उसने अर्थ-व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप भी नहीं किया। व्यवसायी और व्यापारी अपने संगठनों में संगठित थे। कारीगर लोग भी अपनी काम करते जा रहे थे। हाँ, एक बात हुई। और, वह यह कि सरदारों और सैनिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, वस्त्र, शस्त्र आदि की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए, दिल्ली के सुलतानों ने अपने यहाँ बहुत से कारखाने खुलवाये। राज्य द्वारा स्थापित रेशमी कपड़े के कारखाने में ४००० जुलाहे काम करते थे। ये रेशमी वस्त्र श्रीमानों द्वारा उपयोग में लाये जाते थे। सूती व ऊनी कपड़ों के लिए सरकारी कारखाने थे। और कई वस्तुएँ सरकारी कारखानों में तैयार की जाती थीं। किन्तु, इन कारखानों से देश की अर्थ-व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। शिल्पो-श्रेणियों के साथ में वस्तुओं के उत्पादन का व्यवसाय था और वे गाँवों और नगरों में जनता की आवश्यकता की पूर्ति के कार्य अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुसार करते जाते थे।

निरन्तर युद्धों के कारण, खेतिहर, शान्ति और निश्चिन्तता के साथ काम नहीं कर पाता था। देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। इसका सबसे बुरा प्रभाव खेती पर पड़ा। फलतः जलालुद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के जमाने में बड़े-बड़े अकाल पड़े। सबसे ज्यादा नुकसान गरीब खेतिहर और जनता को होता। दिल्ली के आस-पास एक भयानक अकाल, सन् १३४० में, पागल कहे जाने वाले सुलतान मुहम्मद तुगलक के जमाने में पड़ा। सात बरस तक पानी नहीं बरसा। 'पागल' सुलतान ने दिल्लीवासियों के लिए ६ महीने तक के अनाज का इन्तजाम किया। जब देखा कि अकाल कम नहीं होता है तो उसने अयोध्या के समीपवर्ती क्षेत्र में कोरा नामक स्थान पर एक नये नगर का निर्माण करके वहाँ दिल्लीवासियों को छः बरस तक रक्खा।

ऐसा क्यों हुआ? इसलिए कि साम्राज्य तो बन गया था किन्तु, आवागमन के साधनों का विकास नहीं किया गया था। सड़कें नहीं थीं, ऐसी व्यवस्था-नहीं

थी कि जिससे सुरक्षापूर्वक यात्रा और व्यापार हो सके। मन्दिर और मस्जिद भले ही बन जायें, सड़कें नहीं बन सकती थीं।

फिर भी, व्यापार तो होता ही था—विशेषकर उन वस्तुओं का जो सरदारों और अमीरों के काम में आतीं या विदेशों में पहुँचाई जाकर मँहगी बेची जा सकती थीं। चीन, मलाया, अरब और यूरोप से जलमार्ग द्वारा खूब व्यापार होता। कालीकट और भड़ौच के बन्दरगाह प्रमुख थे। स्थल मार्ग द्वारा मध्य एशिया, ईरान और भूटान से सम्बन्ध था। विदेशों में मसाले, कपड़ा, अनाज और अफीम मुख्य थे। विदेशों से बदले में सोना आता।

**सामाजिक दशा :—**हिन्दुओं की सामाजिक दशा गिरी हुई थी। राज्य में वे निचली श्रेणी के नागरिक थे। सुलतान के दरबार में उनके साथ तुच्छता का बरताव होता। अलाउद्दीन खिलजी ने तो उन्हें आर्थिक दृष्टि से हीन करने के लिए तरह-तरह के टैक्स लगाये थे।

दिल्ली सल्तनत में दास-प्रथा बड़े जोरों पर थी। ये दास विदेशों से मँगाये जाते थे। इनमें कुछ भारतीय भी होते। अमीरों और सरदारों को दास रखने का शौक था। दासों से अनेक प्रकार की सेवाएँ ली जातीं—सैनिक सेवा, राज सेवा और वैयक्तिक सेवा। किन्तु जिन दासों में विशेष प्रतिभा या योग्यता होती उन्हें दासता से मुक्त करके ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। युद्ध में पराजित सैनिकों को भी दास बनाया जाता। स्त्रियों को दासी बनाया जाता। सुन्दरी दासियों का मूल्य बहुत अधिक था।

मुसलमानों की इस दास-प्रथा का अनुकरण हिन्दू सामन्तों ने भी किया। राजस्थान के रजवाड़ों के यहाँ यह प्रथा आज भी देखी जा सकती है। आज भी वहाँ के बड़े-बड़े ठिकानेदारों, रजवाड़ों और राजाओं के यहाँ स्त्रियाँ दहेज में दी जाती हैं।

हिन्दू-समाज में आज जो बहुत सी कुरीतियाँ हैं उनका स्रोत भी वही पूर्व मध्ययुग का काल है। पर्दा-प्रथा का अनुकरण हिन्दुओं ने किया। साथ ही,

जीवन की सामान्य असुरक्षा, भविष्य की असुरक्षा को देखते हुए ही बाल-विवाह सर्वत्र प्रचलित हो गया ।

**साहित्य :**—इस युग में सांस्कृतिक क्षेत्र की दो प्रधान घटनाएँ हैं :—  
(१) भक्ति आन्दोलन का उत्थान और प्रसार; (२) देशी भाषाओं का उत्थान तथा उनमें साहित्य का उत्कर्ष । इन सब बातों का यहाँ पूरा विवरण देना मुश्किल है ।

साहित्य की श्रीवृद्धि तीन केन्द्रों से हुई । एक केन्द्र—राज दरबार, चाहे मुस्लिम हो चाहे हिन्दू; दो—जन-साधारण; तीन—इन दोनों से पृथक् और स्वतंत्र व्यक्ति ।

**राज-सभाओं में साहित्यिक उत्कर्ष**—राज-सभाओं में साहित्यिकों तथा अन्य विद्वानों का आसन रहना—एशियायी संस्कृति की विशेषता है । चाहे ईरान की राज सभा हो या बगदाद की, राज-सभा की शोभा, सरदारों और सेनाध्यक्षों के अतिरिक्त, विद्वानों और कवियों द्वारा ही पूरी होती थी । हमारे भारत में भी अति प्राचीन काल से यही पद्धति चली आई । कइयों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि 'विदेशी' भारत विजेता मुहम्मद गोरी के दरबार में ( तथा युद्ध में भी ) हिन्दी के प्रकांड पण्डित डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार केशव राव नामक एक भाषा का ( हिन्दी का ) कवि था । संभवतः वह भाट होगा । अजमेर तथा दिल्ली के प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज चौहान के दरबार में भी, चन्दबरदाई नामक एक कवि था, जिसने पृथ्वीराज के प्रेम, शृंगार, वीरता, उद्यान, प्रासाद, अभियान आदि का अपने महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णन किया । पृथ्वीराज के दरबार में भी हिन्दी-कवि थे और उसके शत्रु मुहम्मद गोरी के दरबार में भी हिन्दी-कवि थे । आज यह विचित्र बात मालूम होती है, इसलिए कि आज हमारा दृष्टिकोण बदल गया है । किन्तु यदि हम ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन करें तो पायेंगे कि अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा बल्ख तक का पूरा प्रदेश भारतीय संस्कृत का अंग रहा आया । कनिष्क अपने सिक्कों पर 'शाहानुशाहि' अर्थात् शहंशाह लिखता था, जो संस्कृत की विभक्ति के साथ,

प्राचीन ईरानी का शब्द है। उसी प्रकार, मुहम्मद गजनवी ने तथा उसके आगे के कुछ उराधिकारियों ने अपने सिक्कों पर, इस्लामी सन्देश के संस्कृत अनुवाद को अंकित किया है। मुहम्मद गजनवी के दरबार में बहुत से भारतीय विद्वान थे। गजनी सुदूर उत्तर-पश्चिम के अन्य प्रदेशों में कभी ब्राह्मणों का भी राज आया, यद्यपि वहाँ बहुतों ने इस्लाम कबूल कर लिया, किन्तु ऐसे भी कुछ होंगे। जिन्होंने वैसा नहीं किया। जिन्होंने धर्म-परिवर्तन नहीं किया उन्होंने नये बने मुसलमानों के राजवंशों में चाकरी की, क्योंकि उनका पूर्वतर पारिवारिक सम्बन्ध एकदम नहीं भुलाया जा सकता था। संभवतः, मुहम्मद गोरी के दरबार में ऐसे ही स्थानीय परिवार का कोई प्राकृत-अपभ्रंश कवि केशवराय रहा होगा।

असल में ये सब चारण कवि थे। किन्हीं में कवित्व अधिक था, किन्हीं में अल्प। हिन्दी के पूर्व मध्यकाल में इस प्रकार का चारण-साहित्य बहुत लिखा गया है। सभी ने वर्णनात्मक काव्य लिखे। पृथ्वीराज के समकालीन जयचन्द के दरबार में भी विद्याधर नामक एक कवि था, जिसने अपने ग्रन्थ में जयचन्द के पराक्रमों की बड़ी प्रशंसा की थी। यह ग्रन्थ अब नहीं मिलता। 'पृथ्वीराज रासो' इतना लोकप्रिय हुआ कि आगे की सदियों में उसके प्रेमियों ने उसमें अपनी ओर से बहुत कुछ मिला दिया। फलतः आजकल जो ग्रन्थ प्राप्त है, उसका मूल पाठ ठीक नहीं माना जाता। जगनिक कवि कृत 'आल्ह खण्ड' प्रबन्ध काव्य और गीत के बीच की बड़ी जोरदार रचना है। किन्तु, आजकल जो पाठ प्राप्त होता है, वह उसका मौलिक रूप नहीं है। लोगों ने तो उसकी भाषा तक को परिवर्तित किया है। शारङ्गधर कवि कृत 'हम्मीर रासो' एक प्रसिद्ध वीर-काव्य है। हमीर तथा अलाउद्दीन खिलजी के बीच हुए युद्ध का उसमें ओजस्वी वर्णन है। उसी प्रकार वीर गीत के रूप में बीसलदेव रासो भी उल्लेखनीय है।

राज-सभा के साहित्यकारों में, विद्यापति स्थान का सर्वश्रेष्ठ है। वे मिथिला के राजकवि थे, उन्होंने मैथिल भाषा में सुन्दर शृंगार पूर्ण रचनाएँ कीं।

मिथिला की राज-सभा संस्कृत-साहित्य को भी खूब प्रोत्साहन देती थी। वाचस्पति मिश्र सरीखे अनेक प्रकांड ग्रन्थकारों ने संस्कृत में रचना की। उस दरबार में संस्कृत को विशेष प्रश्रय मिला।

मुस्लिम दरबार में खिलजी और तुगलक काल में अमीर खुसरो जैसे बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक विद्यमान थे। फारसी को उन्होंने विशेष प्रश्रय दिया। वे भारतीय ज्ञान विज्ञान से, दर्शन और तर्कशास्त्र से, चिकित्साशास्त्र और ज्योतिर्विद्या से विशेष प्रभावित थे। मुहम्मद तुगलक स्वयं प्रकांड विद्वान होने के अतिरिक्त बहुत जिज्ञासु व्यक्ति था। वह अपने युग का सचमुच श्रेष्ठ विद्वान तथा मनीषी था। उनके दरबार में अनेक दार्शनिक तथा विज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं पर उपस्थित भारतीय तथा विदेशी विद्वानों के बीच बहस हो जाती। इस बाद विवाद में मुहम्मद तुगलक जिसे सब लोग पागल कहते थे, स्वयं भाग लिया करता था।

उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलक ने भारतीय दर्शन, ज्योतिर्विद्या तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया। सिकन्दर लोदी के आश्रय में, भारत के आयुर्वेदिक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ। खिलजी और तुगलक राजसभाओं की शोभा बढ़ाने वाले, बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न अमीर खुसरो, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, फारसी के उत्तम विद्वान्, संगीतज्ञ तथा ज्ञान-लिप्सु थे। उन्होंने खड़ी बोली तथा ब्रज-भाषा दोनों में उत्तम रचनाएँ कीं। उनकी पहेलियाँ तथा मुकरियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। यद्यपि, स्वभावतः वे मुसलमानों के पक्षपाती थे, किन्तु हिन्दू ज्ञान, संस्कृति, हिन्दी भाषा, हिन्दू दर्शन, हिन्दू संगीत तथा भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य के वे परम अनुरागी तथा प्रशंसक थे। उनकी ब्रजभाषा बहुत ही ललित है।

जौनपुर का स्वतंत्र प्रान्तीय मुस्लिम राज्य विद्वानों का उदार आश्रयदाता था। वहाँ उनका बहुत सम्मान होता था। जौनपुर (फारसी के बजाय) अरबी

पाण्डित्य, इस्लामिक दर्शन तथा साहित्य का प्रधान केन्द्र था। वहाँ के नरेश इब्राहिम शर्की का नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

किन्तु उन दिनों बंगाल का मुस्लिम दरबार सचमुच अपनी निराली विशेषता रखता था। उसने बंगला भाषा को प्रधानता दी, विद्वानों को आश्रय दिया बंगला के सुल्तानों ने संस्कृत के रामायण और महाभारत को बंगला भाषा में अनुवादित करने के लिए विद्वानों को माननीय पदों पर नियुक्त किया। गौड़, जो बंगाल का एक भाग है, उसके सुल्तान नसरत शाह ने बंगला में महाभारत का अनुवाद कराया। बंगाल के प्रसिद्ध कवि कृत्तिवास को बंगला के सुल्तानों का आश्रय प्राप्त था। सुल्तान हुसैन शाह का आश्रय पाकर, मलधर बसु ने गीत का अनुवाद बंगला में किया। बँगला की मुस्लिम राजसभा ने बंगला के साहित्यिक उत्कर्ष के लिये बहुत कुछ किया।

दक्षिण में विजयनगर के राजा कृष्ण देवराज ने तेलुगू साहित्य में स्वर्ण-युग का उद्घाटन किया। राज्य के प्रोत्साहन के फलस्वरूप तेलुगू साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ।

राज-सभाओं द्वारा एक नई भाषा को भी प्रोत्साहन दिया। उर्दू खड़ी बोली का ही मुस्लिम संस्करण है। दकनी हिन्दी के नाम से (शुरू में यह नाम था) वह खड़ी बोली हिन्दी भी थी और उर्दू भी। वह दक्षिण के मुस्लिम राज्यों द्वारा प्रोत्साहित की गई। जब वह वहाँ फली-फूली तो दक्षिण भारत की राजसभाओं से साहित्यिक रूप धारण करके उत्तर भारत की राज-सभाओं में आई।

राजा और सुल्तान अपने दरबारों में प्रकाण्ड पाण्डितों और कवियों को पाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते थे। किन्तु साहित्यिक उत्कर्ष का मूलकेन्द्र वहाँ न होकर, जन-साधारण था। जन-साधारण प्रतिभाशाली पुत्रों को उत्पन्न कर रहे थे। वे पढ़े-लिखे अक्खड़ और गँवार, दीन और दयनीय सभी जाने वाली जनता के जीवन में आन्दोलन मचा हुआ था। भक्ति

की धारा उसके अन्तःकरण में प्रवाहित हो रही थी। साधु, सन्तों और फकीरों के उपदेशों से और पहुँचे हुए ज्ञानी पुरुषों के सत्संग से उसके हृदय में ज्ञान और प्रेम की अजस्र धारा बह रही थी। उसके प्रतिभा-सम्पन्न पुत्रों में कबीर और नामदेव, रैदास और पलटू, नानक और दादू, तुकाराम और नरसी मेहता, चण्डीदास और ज्ञानेश्वर जैसे महान् सन्तों और कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। मराठी के ज्ञानेश्वर भारतवर्ष के अत्यन्त प्रतिभाशाली कवियों में से थे, जिनकी रसाद्रवाणी ने ज्ञान और भक्ति, योग और प्रेम की अजस्र धारा विशाल जन समुदायों में प्रवाहित की। तुकाराम के अभंग सुन-सुन कर, आज भी महाराष्ट्र के जन-साधारण अपने हृदय को पवित्र करते हैं और मानव-प्रेम में डूब जाते हैं। नरसी मेहता की वाणी आज भी गुजरात की भोपड़ियों में गूँज रही है। ऐसा कौन भारतवासी है जिसने मीरा के पदों को सुनकर अपने हृदय में प्रेम की पीड़ा का अनुभव न किया हो। यद्यपि वह राजरानी थी, किन्तु, साधारण जनों जैसी ही उन्मुक्त उनकी वाणी थी। 'गिरिधर के आगे नाचूँगी' वाली यह मीरा युगयुगों तक भारतीय जनों के हृदय को प्रेम से आप्लावित करती रहेगी। चण्डीदास के विरह-गीतों को सुनकर, भक्ति-गीतों को सुनकर, आज भी बंगाली जनों को पलकें भोंग जाती हैं। हृदय को धोकर, भिगोकर, डुबोकर बह उठने वाली यह भक्ति-धारा शायद ही किसी देश में इस प्रकार प्रवाहित हुई हो।

और, फिर, कबीर और नानक मानव-समानता के प्रचारक, शील और स्नेह पुरस्कर्ता तो थे ही, उन्होंने मानव-मात्र के लिए सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा करनी चाही—वह धर्म नहीं जो किताबों और ग्रंथों में बंधा रहता है, जो रूढ़ियों और रिवाजों में फँस जाता है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच, गर्व और दंभ, पाखण्ड और द्वेष की दीवारें खड़ी करके मानवता को अलग-अलग टुकड़ों में काट कर तितर-बितर कर देता है, वरन् उन्होंने उस धर्म को प्रतिष्ठित किया, जो मानव-मात्र के अन्तःकरण में मानव-गुण के रूप में विराजमान है, जो हृदय का गुण और आत्मा का स्वभाव है, जिसके द्वारा मानवता अखण्ड हो जाती है, जनता

एक हो जाती है और अन्तःकरण पर प्रेम और सद्भावना के आलिंगन पड़ जाते हैं ।

कबीर का कवित्व केवल साहित्यिक महत्त्व ही नहीं, वरन् ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । अक्खड़, बेदरकार, बेलौस, बेमुरब्बत कबीर में मानव-स्नेह का अजस्र निर्भर प्रवाहित होता था । उनके दोहे हम में प्राण-शक्ति का संचार करते हैं । ज्ञानक की वाणी ईश्वरीय प्रेरणा से युक्त है, उसमें ज्ञान का प्रकाश तथा भावना का गीलापन है । रैदास के नम्र हृदय में सारा विश्व आर्द्र होकर विराजमान था । सेना नाई और पलटू, ईश्वरीय ज्योति हृदय में धारण करके लगभग मसीहा थे; किन्तु न उनका बाना मसीहाई था, न उनका रहना । अगर पलटू सामने आकर खड़े हो जाँय तो शायद वे इतने दीन होंगे कि हम अपने बरामदे से उन्हें निकाल देंगे ।

इसलिए उन दिनों यह ख्याल था कि नारायण ( ईश्वर, भगवान ) स्वयं दीन-जन का रूप धारण करके घूमते फिरते हैं; पता नहीं, बाहर नंगे पाँव घूमते हुए इन दीन जनों में कौन सचमुच भगवान हो ।

दिल्ली सल्तनत की राजनैतिक घटनाओं को देख-देख, बहुतों का हृदय उदास हो जाता है । किन्तु भारतीय प्रतिभा ने राजनीति को इतना महत्त्व दिया होता तो वैसी घटनाएँ कभी हो ही न पातीं । किन्तु, यदि भारतीय धर्मों को इतने बड़े पैमाने पर चुनौती न मिल पाती तो शायद उस युग का वह अजस्र उत्थान, जिसके सामने हमारा आधुनिक युग फीका है, हमारे सामने कभी न आ पाता, भारतीय धर्मों में हृदय की आर्द्रता, मानव-मात्र के प्रति उदार प्रेम और जीवन-मात्र का आलोक न हो पाता; उससे रूढ़ियों और भेदोपभेदों में बन्दी मानव, ईश्वर के सामने आकर, अपने भेदों को भूल गया । इस्लाम का भारतीयकरण हो गया । हिन्दू इस्लाम के आलोक में नहा उठा ।

निःसन्देह राजाओं की सभाओं में पनपने वाले सहित्य में पांडित्य की जड़ता, अलंकरण-प्रियता और विलासाकुल वृत्ति है । इसके विपरीत जन-साधारण

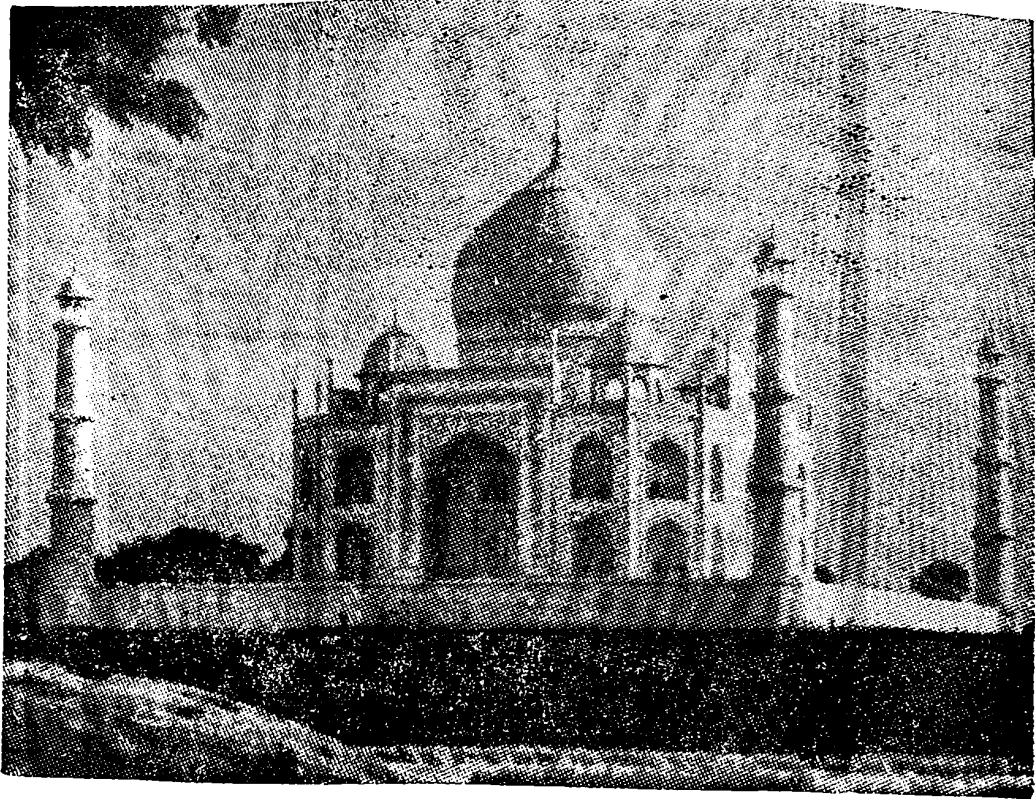


की झोपड़ियों में गूँजने वाले गीतों की भावना छन्द तोड़ कर उमड़ उठती है। बात ठोस है, ठिकाने की है, सीधी चोट करती है। उसमें एक उमड़ती हुई पुकार है, एक भगड़ता हुआ आक्रोश है और रगड़ती हुई चुनौती है। उसमें बालक और स्त्रियों की करुणा-कातर भावना है, और नम्र प्रेम है। यदि आधुनिक युग में न सही ईश्वर-भक्ति, किन्तु उसका थोड़ा-सा भी हृदय गुण आ सके तो हमारा जीवन अधिक आह्लादमय, सरस और आर्द्र हो उठे।

उन दिनों संगीत, चित्रकला, भवन-निर्माण-कला नई ऊँचाइयाँ छूने लगीं। बड़े-बड़े किलों की मेहराबों में एक नई सुकुमारता आ गई। नये राग, जैसे ठुमरी चलाये गये। भव्यता और कोमलता इन दोनों गुणों से संयुक्त होने लगी हमारी कला। मुसलमानों ने इन कलाओं को आत्मीय बनाकर उनमें नया रस डाला। क्या संगीत को हिन्दू-संगीत और मुस्लिम-संगीत कहा जा सकता है? कला के क्षेत्र में इस प्रकार का भेद करना असंभव इसलिए हो उठता है कि कला मानव-हृदय से उत्पन्न होता है और कलाओं में प्रकट मुस्कानों और आँसुओं को हम नहीं कह सकते कि ये हिन्दू-मुस्कान हैं, वे मुस्लिम मुस्कान, ये हिन्दू आँसू हैं, वे मुस्लिम आँसू! क्यों? इसलिए कि ये कलाएँ हिन्दू और मुस्लिम सामन्तों ने नहीं बनाईं। सामान्य जनता में से उत्पन्न होने वाले कलाकारों और कारीगरों ने उन्हें प्रसूत किया। चूँकि वे अपनी जनता के सच्चे बेटे थे, इसलिए उनके हृदय में भी वही आह्लादकारिणी मानव-हृदय की एकता और अभिन्नता वर्तमान थी। क्या उस काल की यह देन आज की कला से किसी कदर भी कम थी? वह आज की कला से अधिक उच्च और स्थायी थी, इसलिए कि वह समय के हथौड़ों से जाँची जा चुकी है, खरी उतरी है।

मध्य और पश्चिमी एशिया को सुशोभित करने वाले गुम्बज और मीनार, भारतीय कलाकारों के हाथ में पड़कर निःसंग भूरा रूखापन भूल गये। इनमें एक नया लालित्य और सौकुमार्य आ गया—किन्तु मजबूती वैसी ही बनी रही

हिन्दू और मुस्लिम प्रतिभा के योग से भवन-निर्माण की एक नई शैली का ही विकास हुआ ।



ताजमहल

मेहराबें हृदय की कोमलता प्रकट करने लगीं । बागों में लगाये जाने वाले तरह-तरह के भरने तथा दीवारों पर अंकित या खुदी हुई सुनहरी फूल-पत्तियाँ— हृदय के उत्साह और आनन्द को, उत्फुल्ल, सौन्दर्य-भावना को और विशालता की संवेदना को एक साथ प्रकट करने लगीं ।

उस काल की ये महान् उपलब्धियाँ अन्य युगों से किसी भी हालत में कम नहीं हैं ।

### प्रश्न

१. मुस्लिम शासन का भारतीयकरण किस प्रकार होता रहा ?
२. मुस्लिम प्रान्तीय शासनों में हिन्दुओं की स्थिति क्या थी और भारतीय सांस्कृतिक अभ्युत्थान में उन्होंने क्या योग दिया ?

३. आध्यात्मिक सांस्कृतिक क्षेत्र में किस प्रकार दोनों जातियाँ एक दूसरे के सन्निकट आती गईं ।
४. प्रारम्भ में तुर्क अफगान आक्रांताओं के हिन्दू-विरोधी कार्यों का विश्लेषण करते हुए उनकी जातीय सामाजिक पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालिये ।
५. सामान्य मानव-धर्म की प्रतिष्ठा का प्रश्न उन दिनों क्यों उठ खड़ा हुआ ? कारण स्पष्ट कीजिये ।
६. उन दिनों की परस्पर-विरोधी विशेष सामाजिक मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालिये ।
७. भक्ति-आन्दोलन के सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व का विवेचन कीजिए ।
८. तत्कालीन साहित्य के प्रमुख उद्गम-केन्द्रों पर प्रकाश डालते हुए, उनसे निःसृत साहित्य की परस्पर तुलना कीजिये ।
९. टिप्पणी लिखिये—
 

(१) जैनुल आबेदीन,	(२) सत्यपीर,
(३) ख्वाजा खिज़्र,	(४) कबीर और नानक,
(५) कृत्तिवास ।	

## सात समुन्दर पार के जहाज । ११

[ एक ओर मुगल साम्राज्य नष्ट हो रहा था, मराठों और सिखों की शक्ति बढ़ रही थी तो दूसरी ओर सात समुन्दर की एक विदेशी जाति ने भारत में हाथ पैर फैलाना शुरू कर दिया । देश की राजनैतिक अस्तव्यस्तता का उसने पूरा लाभ उठाया और उन्नीसवीं सदी के मध्य तक पूरा भारत अंग्रेजों का गुलाम हो गया ।

जमाने को चक्कर आ गया । एक के बाद एक भारतीय राज्य ढहते गये । किन्तु साथ ही भारत, यूरोप की एक उन्नतिशील जाति के सम्पर्क में आया । ]

मुगलकाल में भारत की सर्वतोमुखी प्रगति और अर्थ-वृद्धि की कीर्ति-कथा यूरोप में फैल गयी थी । कोलम्बस नामक एक साहसी मल्लाह भारत की ओर जाने वाले जल-मार्ग की तलाश करते-करते अमरीका के समुद्र-तट तक आ गया था । पंद्रहवीं सदी के अन्त में, यूरोप के दक्षिण-पश्चिम एटलांटिक तट पर स्थित पुर्तगाल देश की जहाजी ताकत दुनिया के सब देशों से बढ़ी-चढ़ी थी । सन् १४९९ ई० में उसके एक साहसी मल्लाह वास्को डि गामा ने भारत के कालीकट बन्दरगाह में लंगर डाल दिया । धीरे-धीरे उन्होंने पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेशों में व्यापारिक कोठियाँ बनाने की इजाजत ले ली । इसके साथ, उन्होंने उन कोठियों की रक्षा के हेतु सेना रखने की भी सुविधा प्राप्त कर ली । धीरे-धीरे, ये कोठियाँ समृद्ध होती गईं और उनके रक्षार्थ अब तक जो सेनाएँ थीं उनका भी विस्तार होता गया । अब नये-नये क्षेत्र अधिकार में लेकर राज्य स्थापित करने की इच्छा भी बढ़ गई । परिणामतः, क्रमशः पुर्तगीज साम्राज्य

भारत में स्थापित हुआ ( जो सन् १६६२ ई० के दिसम्बर में ही लुप्त हुआ ) एक जमाने में इस साम्राज्य के अन्तर्गत बम्बई का बड़ा बन्दरगाह भी था ।

पुर्तगालियों ने भारत का माल लेकर जब योरोप में बेचना शुरू किया तो वह माल इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि वहाँ के सविस्तृत भू-प्रदेशों में भारतीय माल की माँग बढ़ गई । इससे पुर्तगीज व्यापारियों को खूब फायदा हुआ । ये लोकप्रिय वस्तुएँ थीं—मसाले और मलमल । पुर्तगाली यूरोप से तरह-तरह की चीजें लाते । विजय नगर के राज्य को वे ईरानी घोड़े बेचते । विजयनगर राज्य का विदेशी व्यापार, मुख्यतः, पुर्तगालियों के हाथ में था ।

पुर्तगालियों ने भारत में रोमन कैथोलिक धर्म को प्रचारित किया । भारत में आजकल एक बहुत बड़ा जन-समूह, रोमन कैथोलिक है । साथ ही भवन-निर्माण भी मध्ययुगीन यूरोप के ढंग का होने लगा । मद्रास में मादलापुर का विशाल गिरजाघर पुर्तगीज धार्मिक कला का प्रतीक है ।

भारतीय व्यापार के कारण पुर्तगाल की बढ़ती हुई समृद्धि को देख, योरोप के अन्य देश भी हमारी तरफ ललचाई आँखों से देखने लगे । सन् १६०० ई० में ब्रिटेन में 'इस्ट इण्डिया' कम्पनी की स्थापना हुई । इस कम्पनी का उद्देश्य व्यापार करना तथा ब्रिटेन के अधिपति की ओर से राज्य-विस्तार करना भी था । पुर्तगालियों ने इनका मुकाबला करना चाहा, लेकिन उन्हें मुँह की खानी पड़ी । अब हुआ यह कि इस कम्पनी ने मुगल-सम्राट् से बहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर लीं । कोठियों की रक्षा के लिए इन्होंने सेनाएँ भी रखीं । धीरे-धीरे इन्होंने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया । मद्रास और कलकत्ता ब्रिटेन के प्रधान नगर बन गये । सन् १६६४ में फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई । उसने अपना केन्द्र मद्रास के समीप पांडिचेरी बनाया । दोनों कम्पनियाँ अपनी-अपनी सेनाएँ तो रखती ही थीं, अब कभी-कभी वे आपस में लड़-भिड़ जातीं और भारतीय नरेशों के यहाँ अपने-अपने प्रभाव, बिस्तार का प्रयत्न करतीं; अनुकूल समय प्राप्त होने पर, वे अपना राज्य विस्तार भी कर लेतीं । फ्रांसीसी ( फ्रेंच ) कम्पनी का कुशल नेता और सेनानी डूप्ले था और अंग्रेजी कम्पनी का राबर्ट क्लाइव ।

उधर जैसा हम बता आये हैं, अठ्ठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में केन्द्रीय शासन का अभाव था। सारा देश विभिन्न राज्यों में बँट चुका था। मराठों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। उनका आतंक सारे भारत पर था। पर वे किसी अखिल भारतीय शासन संघ की नींव नहीं डाल पा रहे थे। यहाँ तक कि उनमें भी आपस में फूट थी। पूना के पेशवा राजनीति-कुशल होने के कारण राज्य के विभिन्न सेनानी सामन्तों में शक्ति-सन्तुलन रखने का प्रयत्न करते रहते। उधर, देश के व्यापार में वृद्धि हो गई थी। भारतीय हिन्दू और मुस्लिम राज्यों के शासक विलास-सुख में पड़े हुये थे। किन्तु साथ ही आपस में मारकाट भी होती ही रहती थी।

उस अशान्ति और विलास-निद्रा के युग में, मारकाट और लोलुपता के काल में इन नवीन शक्तियों ने अपना सिर उठाया। भारत के विविध राजाओं, नवाबों और सुलतानों के आपसी ईर्ष्या-द्वेष से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने (फ्रांसीसी कम्पनी के नेता डूप्ले को मत देते हुए) अपना राज्य विस्तार किया। अठ्ठारहवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक का यह काल ब्रिटिश राज्य के विस्तार का समय था।

फ्रांसीसी और अंग्रेजी फौजों की भिड़न्त कर्नाटक-युद्धों के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १७६१ ई० में जब क्लाइव ने फ्रान्स के भारतीय केन्द्र पाण्डिचेरी पर हाथ साफ किया तो भारत में फ्रांसीसियों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। इसके बाद वे अपना सिर फिर कभी न उठा सके।

उत्तर, दक्षिण के राज्यों में एका न था। निजाम और मराठों की कभी नहीं बनी। उधर मैसूर के हिन्दू राजा को निकालकर सुलतान बने हुए वीर पुरुष हैदरअली और उसके पुत्र टीपू सुलतान ने कई बार अंग्रेजों को भारतीय शक्ति का मजा चखा दिया। टीपू ने फ्रान्स के प्रसिद्ध सेनानी और सम्राट् नैपोलियन से पत्र-व्यवहार किया और उसकी सहायता लेनी चाही, यहाँ तक कि मौरिशस द्वीप के कुछ फ्रांसीसी सैनिक टीपू की सेना में आ भी गये। किन्तु मजा यह है कि मराठों ने उसे कोई सहायता नहीं की, न टीपू ने परस्पर द्वेष के कारण लेनी ही चाही।

उन दिनों फ्रांसीसी सलाहकार भारत के कई राजाओं के यहाँ रहने लगे थे। निजाम हैदराबाद के दरबार में फ्रांसीसी प्रभुत्व का प्रवेश हो चुका था। ग्वालियर के महादजी सिन्धिया का एक सेनाध्यक्ष फ्रांसीसी था। उसने मध्य भारत में एक नयी बस्ती की नींव डाली। वह आज सिर्फ गाँव है, जिसका नाम ईसागढ़ है।

प्लासी की लड़ाई भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय के फलस्वरूप सारे देश में उनकी धाक बैठ गई।

प्लासी कहाँ है? उस युद्ध को इतना महत्त्व क्यों? ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सदर-मुकाम कलकत्ता था। कलकत्ते में बैठकर अंग्रेज बंगाल में और राज्य-शासन में गुप्त और प्रकट रूप से हस्तक्षेप करते जा रहे थे।

भारत में शत्रुओं को मदद पहुँचाने वाले लोगों की कभी कमी नहीं रही। अंग्रेजों ने शासन के, समाज के, बहुत से व्यक्तियों को, जिसमें बड़े-वड़े व्यापारी, राजकर्मचारी, सेनापति, सामन्त और सरदार शामिल थे, अपनी ओर कर लिया था। उनकी मदद से सारे बंगाल पर उनका राजनैतिक, सैनिक और आर्थिक प्रभाव हो गया था। बंगाल का सुलतान नाम-मात्र का सुलतान रह गया था।

एक जमाना वह भी आया जब अंग्रेजों ने पूरा राज्य अपने कब्जे में करना चाहा। बंगाल का नवाब मीर सिराजुद्दौला बहादुरी से लड़ा लेकिन बुरी तरह हार गया।

बंगाल के राज्य में बिहार और उड़ीसा के भी प्रदेश थे। दिल्ली के नाम-मात्र के सम्राट् शाहआलम के अधीन भी वे नाम-मात्र के ही लिए थे। इस नाम-मात्रता की परम्परा को निबाहने के लिए अंग्रेजों ने शाहआलम से माल-गुजारी और न्याय विभाग के अधिकार ले लिये। उधर बंगाल के राज्यासन पर उन्होंने एक के बाद एक दो कठपुतली नवाब मीर जाफर और मीर कासिम बैठा दिये। सच्ची शक्ति कम्पनी के हाथ में ही थी। सन् १७७२ ई० में उन्होंने नवाबों को उड़ा दिया और बंगाल-उड़ीसा का राज्य, प्रत्यक्षतः अपने अधीन कर लिया।

इसके बाद उन्होंने शाहजालम पर दबाव डालकर इन प्रान्तों से ( नाम मात्र के लिए ये प्रान्त मुगल बादशाहत के अंग समझे जाते थे ) न्याय-विभाग और मालगुजारी वसूली के अधिकार ले लिये । इसके बाद भारत की राजनीति में उन्होंने बड़े तरोके से बहुत चतुर होकर, लेकिन जोरदार ढंग से हस्तक्षेप किया । सन् १७६६ ई० में कम्पनी ने मैसूर के शेर टीपू सुलतान को खत्म करके उसका राज्य अपने अधीन कर लिया ।

सन् १८१८ ई० में उसने पूना के पेशवा राज्य को, उसी सन् में नागपुर के भोंसला राज्य को समाप्त कर दिया । सन् १८४३ ई० में सिन्ध खत्म हो गया और सन् १८४८ ई० में गौरवमय सिक्ख राज्य का लोप हो गया । इस बीच छोटे-छोटे राज्यों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति से भयभीत होकर उसकी अधीनता ग्रहण कर ली । भारत में अब तक जो देशी राज्य बच रहे थे, वे केवल अंग्रेजों की कृपा के कारण । सन् १८५७ ई० तक सारा भारतवर्ष अंग्रेजों के हाथ में आ गया । इस विस्तार-कार्य का श्रेय क्लाइव के बाद वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, वेलेजली; हार्डिंग और डलहौजी जैसे अंग्रेज गवर्नर जनरलों को है । ये भारत में ब्रिटिश साम्राज्य-निर्माता थे ।

**भारतीय पराजय के कारण :**—अंग्रेजों ने संगठित रूप से भारत की विजय की । उनमें अनुशासन था । उनकी सेनाओं में अनुशासन था । उन्होंने देश की फूट से पूरा लाभ उठाया । उन्होंने हर राजा और नवाब के दरबारों के बहुत से आदमी अपनी ओर कर लिये थे । हर राजा और नवाब के घर की हालत उन्हें मालूम थी । वे एक राजा का पक्ष लेकर दूसरे राजा से लड़ते । उन्होंने बहुत दिनों तक राजाओं-नवाबों के मन में यह भाव उत्पन्न करके रखा कि वे अपना राज्य कायम नहीं कर रहे हैं, वरन् भारतीय राजाओं को सिर्फ मदद भर दे रहे हैं ।

भारतीय राजा-नवाब अपनी-अपनी चहारदीवारी में घिरे हुए थे । बाह्य जगत् का ज्ञान अपूर्ण और विकृत था । सम्पूर्ण देश का पूरा भौगोलिक ज्ञान भी उनके पास नहीं था । अंग्रेजों की गति-विधियों का उन्हें पता न चलता, किन्तु उनकी हलचलों की सारी जानकारी अंग्रेजों को मिल जाती ।



वे एकता बद्ध नहीं थे। आपस में मारकाट थी। किन्तु घर के भीतर भी फूट थी। ऐन मौके पर उनके सरदार अंग्रेजों से मिल जाते। सामन्त-समाज-व्यवस्था जर्जर हो गई थी, प्रशासन शिथिल था। सेनाओं में अनुशासन नहीं था।

इन राजवंशों में एकाध राजा, एकाध नवाब पराक्रमी, अनुशासन-प्रिय निकलता। किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त फिर वही अस्तव्यस्तता आ जाती। अस्तव्यस्ता और अव्यवस्था, आपसी मारकाट और घर की फूट परम्परागत थी। एकता और अनुशासन, प्रबन्ध-कुशलता और सद्भावना की परम्परा का अभाव था। किन्तु मुख्य बात यह है कि वे अपनी चहारदीवारी में वन्द थे। फलतः वे अज्ञानी थे।

अंग्रेज अधिक विकसित समाज-व्यवस्था के प्रतिनिधि थे। यह समाज-व्यवस्था आधुनिक समाज-व्यवस्था है, जो आज अंग्रेजों की क्रूर-कृपा के कारण हमारे यहाँ है। यह समाज व्यवस्था अधिक विकसित, अधिक कुशल और अधिक ज्ञान-सम्पन्न होने से उसके आगे भारत की पुरानी समाज-व्यवस्था के प्रतिनिधि टिक नहीं सके।

### प्रश्न

१. पुर्तगीज आधिपत्य के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? भारत ने यूरोप का ध्यान अपनी ओर कैसे आकर्षित किया?
२. कौन-कौन सी यूरोपीय कम्पनियाँ भारत में आईं। उनके परस्पर सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये।
३. प्लासी की लड़ाई के बारे में आप क्या जानते हैं?
४. दक्षिण में किन राज्यों ने अंग्रेजों का मुकाबला किया?
५. टिप्पणी लिखिये :—  

(अ) मीर सिराजुद्दौला,	(ब) हैदर अली,
(स) टीपू सुलतान,	(द) इप्ले।

## कम्पनी राज, सन् सत्तावन का स्वतंत्रता-युद्ध । १२

[ कम्पनी राज में भारत नंगा हो गया । बंगाल में लूट मची । लूट अंग्रेजी शब्द बन गया । बंगाल के धन से इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ । अब वहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हो गया । तैयार माल भारत आने लगा । देशी वस्त्रोद्योग ठप हो गया । लाखों कारीगर बेकार हो गये । अकाल पड़े । भयानक अकाल !! कम्पनी राज ने परम्परागत भारतीय अर्थ-व्यवस्था बलपूर्वक नष्ट कर दी । पंचायती आत्म-निर्भर ग्राम-समाज चौपट हो गये । भूमिपति भारत की भूमि में जबर्दस्ती आरोपित किये गये । उधर, कुछ देशी रजवाड़ों के साथ गहरा अन्याय किया गया । जनता में असंतोष था ही । पुराने सामन्तों और राजाओं ने विद्रोह का भंडा खड़ा किया । यही सन् सत्तावन का गदर था । उसका होना ही स्वाभाविक था । अगर वह न होता तो अस्वाभाविक बात होती । ]

भारत में सबसे ज्यादा गरीबी कहाँ है ? 'भूखा बंगाली'—यह मुहावरा किसे नहीं मालूम ? आज भी भारत में सर्वाधिक दारिद्र्य बंगाल, उड़ीसा और मद्रास के कुछ इलाकों में पाया जाता है । सामान्य जनता का जीवन-स्तर यहाँ अत्यधिक नीचे है । पंजाब की सामान्य-जनता का जीवन-स्तर सबसे ऊँचा है ।

मद्रास का नगर अंग्रेजों के आधिपत्य में लगभग ३०५ साल तक रहा । दूसरे इलाके १५० साल के ऊपर उनके अधीन रहे । आज यदि यहाँ दुर्भिक्ष के ऊपर दुर्भिक्ष पड़ते हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अंग्रेजों का शासन २०० वर्षों तक रहा । उत्तर-प्रदेश में उनका आधिपत्य लगभग १३० वर्षों तक रहा । पंजाब में उनका राज्य सिर्फ ६८ साल रहा ।

**लूट** —बंगाल में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सीधी और खुली लूट मचाई थी। जो भूमि-व्यवस्था उन्होंने कायम भी की, वह लूट मचाने के लिए। न सिर्फ उन्होंने खेतिहरों को जेब से धेला-धेला निकाल लिया, वरन् मरे हुए खेतिहरों के नाम से भी वसूली की। एडवर्ड टॉमसन और जी० टी० गैरेट नामक इतिहासज्ञों ने लिखा है कि उन दिनों अंग्रेज पागल होकर लूट करते थे। क्लाइव ने बंगाल में जो अंग्रेज सल्तनत कायम की, वह सिर्फ लूट के लिए। खेतिहरों और कारीगरों पर भयानक से भयानक अत्याचार किये गये। ये अत्याचार बीसियों सालों तक लगातार चलते रहे। यहाँ तक कि 'लूट' शब्द अंग्रेजी भाषा में स्वीकृत हो गया। आगे चलकर इस लूट को व्यापार कहा जाने लगा। कानून का रूप धारण कर अब यह लूट और भी भयानक हो उठी।

इस लूट से अंग्रेजों के देश में एक नई प्रक्रिया चल पड़ी। सन् १७०० ई० में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति आरंभ हुई। इसी बीच बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा और वहाँ का धन तथा सम्पत्ति इंग्लैण्ड जाने लगी। सन् १७५७ में प्लासी की लड़ाई के बाद, बंगाल में खुली अनखुली लूट ब्रिटेन भेजी जाने लगी। इससे ब्रिटेन में चल रही औद्योगिक क्रान्ति बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। विज्ञान तथा उद्योग की उन्नति और प्रसार के लिए, करोड़ों और अरबों रुपये की जरूरत लगातार रहती है। यह सारा धन और सम्पत्ति बंगाल से इंग्लैण्ड गया। बंगाल के धन से इंग्लैण्ड में एक के बाद एक मशीनें निकलती गईं, जिनका प्रयोग उद्योगों में होने लगा। इंग्लैण्ड में औद्योगिक उत्पादन बड़े भारी पैमाने पर होने लगा। विशेषकर वस्त्रोद्योग का प्रचण्ड विकास हुआ। उसी प्रकार, अन्य उद्योगों की भी उन्नति हुई।

जिस बंगाल ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का खर्च दिया, उसी बंगाल में भुखमरी फैलने लगी। सन् १७७० ई० में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। अनगिनत लोग मरे।

इधर ब्रिटेन से अब बना-बनाया माल भारत आने लगा। हमारे यहाँ छोटे-बड़े शहरों में करोड़ों कारीगर थे। (मशीनें न होने से, हाथ से काम होता

था, इसलिए लाखों लोगों की आजीविका कारीगरी से चलती थी—वह उनके जीवन का मुख्य साधन था)। ये कारीगर अब भूखों मरने लगे, उनका व्यवसाय चौपट हो गया। करोड़ों लोग बेकार हुए। उनमें से बहुत से सिर्फ भूख से मर गये। उनकी मृत्यु-संख्या (कई दशान्दियों को मिलाकर) करोड़ों तक पहुँची। भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड बैण्टिङ्ग ने लिखा—“व्यापार और वाणिज्य के इतिहास में, कष्टों की भयानक का ऐसा उदाहरण कभी सामने नहीं आया। भारत के मैदानों में वुनकरों की सफेद हड्डियाँ सब ओर बिखरी हुई हैं।”

बहुत से लोग जो प्राण बचाकर भागे वे खेतों की ओर गये। खेत पहले ही से बँटे हुए थे। इन बेचारों के आने से वे बँटकर बहुत छोटे-छोटे हो गये। ज्यों-ज्यों अंग्रेजों का राज फैलता गया त्यों-त्यों कारीगरों में बेकारी बढ़ती गई। उनकी मौतें होती रहीं। शेष बेकार खेती की ओर बढ़ते रहे। इस प्रकार असंख्य लोग शहरों से गाँव की ओर भागने लगे।

खेती पर बहुत अधिक भार आ पड़ा। इससे खेतिहर की औसत आमदनी घटती चली गई। भारत में जिन जगहों में अंग्रेजों की हुकूमत थी, वहाँ त्राहि-त्राहि मच गई।

उधर इंग्लैण्ड ने भारत को परम्परागत समाज-व्यवस्था के मूलाधार बने हुए आत्म-निर्भर ग्राम-समाजों पर आघात किया। प्रत्येक ग्राम-समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के सभी साधन थे—बुहार, कुम्हार, दर्जी, सुनार, पुरोहित, वैद्य इत्यादि। इन सबकी सहकारिता के आधार पर, पंचायती ढंग से, ग्राम-समाज का शासन होता था। यह शासन पंचायती देख-रेख के भीतर चलता था। असल में वे एक प्रकार के ग्राम-राज्य थे, यद्यपि वहाँ कोई राजा, या गवर्नर न था।

भारत के करोड़ों खेतिहरों से सम्बन्ध स्थापित करना और उनसे नियमित रूप से भूमि-कर वसूल करना अंग्रेजों के लिए कठिन था। इसलिए, उन्होंने इंग्लैण्ड के नमूने पर, भूमिपति (जमींदार अथवा मालगुजार) पद्धति की

स्थापना की। अब गाँव का मालिक जमींदार या भूमिपति हो गया। उसका काम था—वह भूमिकर वसूल करे और नियमित रूप से, निश्चित समय पर उसे अंग्रेज सरकार को दे। अंग्रेजों का उद्देश्य यह भी था कि वे एक ऐसे वर्ग का निर्माण करें कि जो अपनी आय और धन-सम्पत्ति के लिये केवल उन्हीं पर निर्भर हो, साथ ही जिसका अधिकार और प्रभाव विस्तृत जन-समाज पर, विशेष रूप से किसान जनता पर रहे। इस उद्देश्य से उन्होंने एक ओर भूमिपतियों को और दूसरी ओर बचखुचे राजे-रजवाड़ों को अपनी ओर करके, भारत का उपयोग इंग्लैण्ड की औद्योगिक उन्नति और विकास के लिए तथा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए किया।

सन् १८५७ ई० के स्वाधीनता-युद्ध के पहले भारतीय जनता की दुर्दशा हो चुकी थी। देश की सामान्य जनता में भी असन्तोष छा गया था। यहाँ तक कि अंग्रेजों की भारतीय सेनाओं में भी बेचैनी फैल रही थी।

**सन सत्तावन का स्वतंत्रता-युद्ध**—बंगाल पूरी तौर से अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया गया था; वहाँ ऐसे वर्ग निकल आये थे, जिनका सामान्य जन-समाज पर प्रभाव था। किसान जनता ने, दुःख को स्थायी समझ कर, उससे समझौता कर लिया था। पुराना सरदार—सामन्त वर्ग या तो अंग्रेजों से पूरा समझौता कर चुका था या उसे नष्ट कर दिया था। उसी प्रकार, मद्रास की भी हालत कर दी गई थी। उधर, पंजाब के सिक्खों को अंग्रेजों की फौज में सिर्फ भरती ही नहीं किया गया था, उनके लिए सुख-सुविधा के अनेक प्रबन्ध किये गये। इस प्रकार, पंजाब को अनुकूल बनाया गया था, बंगाल और मद्रास को कुचल दिया गया था। महाराष्ट्र गुलामी की जंजीर में आ चुका था। वहाँ के सरदारों और सामन्तों का प्रभाव पेशवाई के अन्तिम दिनों में ही समाप्त हो रहा था।

किन्तु उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मध्यभारत और दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रों में जान बाकी थी। समाज का सर्वोच्च वर्ग अभी भी पुराना सरदार-सामन्त वर्ग था। यह अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। उसी प्रकार सामान्य जनता भी क्षुब्ध

थी। अंग्रेजों के एक गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने उनके साथ अन्याय किया था। इसलिए यह वर्ग बहुत क्षुब्ध था।

अंग्रेज अपने-आप में एक शासक जाति बन गये थे। वे भारतीय जनता से अलग और दूर रहते थे। दोनों के बीच जबरदस्त खाई थी। वे अपने गोरे रंग के कारण भी भारतीयों से द्वेष रखते थे। भारतीयों के साथ वे दुर्व्यवहार भी करते रहते थे। अंग्रेज हिन्दुस्तान में रहने के लिए नहीं आये, माल की लूट करने और सात समुन्दर पार अपना घर भरने के लिए आये थे। इसलिए, भारतीय जनता में उसके विरुद्ध विक्षोभ होना स्वाभाविक ही था।

गदर की आग मेरठ से उठी और दिल्ली से लेकर कानपुर होती हुई नागपुर तक फैल गई। अवध और भाँसी उस आग में जगमगाने लगे। उस गदर ने बड़े-बड़े नेता पैदा किये। तात्या टोपे और भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अजीमुल्ला खान और दिल्ली के अन्तिम मुगल वंशधर बहादुर के सम्बन्धी फीरोजशाह, नाना साहब पेशवा और अन्य। हिन्दू-मुस्लिम एकता हो गई। भारतीय सामान्य जनता ने साथ दिया। बागियों ने कानपुर से अपना अखबार निकाला। वह मराठी, हिन्दी और उर्दू में एक साथ निकला। उसके प्रथम अंक में बहादुरशाह का सन्देश प्रकाशित किया गया, मुख-पृष्ठ पर। वह हस्त लिखित पत्र था, जिसकी सैकड़ों और हजारों प्रतियाँ निकलती थीं। वह गुप्त रूप से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, एक फौजी कैम्प से दूसरे फौजी कैम्प भेजा जाता। लाने-ले जाने का काम औरतें करतीं। विद्रोह की ज्वाला सुलगाने में उस पत्र ने बड़ा काम किया। भारत के हृदय-प्रदेश में एकाएक नये चैतन्य का, जागृति और स्फूर्ति का संचार हुआ। विद्रोहियों ने कई नगर जीते, अंग्रेजों को पीछे खदेड़ा। उन्हें भारतीय तेजस्विता का परिचय करा दिया। किन्तु विद्रोही असंगठित थे। एक न एक दिन उनकी हार होने वाली थी। सो, हो कर रही। बाकी प्रान्त तमाशा देखते रहे, या अंग्रेजों की मदद करते रहे। तात्या टोपे विद्रोहियों का सबसे कुशल, सर्वाधिक वीर तथा साहसी सेनाध्यक्ष था उसको फाँसी लगा दी गई। महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के साथ लड़ते-लड़ते मरी।

इस तरह काम तमाम हुआ। लेकिन ब्रिटेन तथा यूरोप में अंग्रेजों की पोल खुल गई। उनकी बर्बरता और दुष्टता का इतिहास, सावरकर लिखित 'भारत का स्वाधीनता युद्ध' पढ़ने लायक है। स्वयं प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिसकवरी आफ इण्डिया' में उस पुस्तक का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा कि अंग्रेजों ने इस पुस्तक को तो दबा दिया (उसे गैरकानूनी कर दिया था। उसी प्रकार पण्डित सुन्दर लाल का 'भारत में अंग्रेजी राज' भी निषिद्ध कर दिया गया था) किन्तु शहरों में विभिन्न स्थानों पर अंग्रेजों के पुतले खड़े किये गये। सारा भारतीय इतिहास उन्होंने इस तरह लिखा, जिसमें साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ही उचित और सही माना जाय।



महारानी लक्ष्मी बाई

तात्या टोपे, अजीमुल्लाह इत्यादि तथा मंगल पांडे सरीखे असामान्य साहसी भारतीय वीरों की हमारे यहाँ कहीं कोई मूर्ति नहीं है, उनका कोई स्मारक नहीं है। किन्तु उनका स्मारक वे कथाएँ हैं, जो नगरों तथा ग्रामों की जनता में प्रचलित रहीं, जिनमें अवध की बेगमों पर किये गये अत्याचार, नागपुर के सोताबाड़ी किले के पास वीरों को दी गई फाँसियाँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

सन् १८५७ के गदर के परिणामस्वरूप, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और वह ब्रिटिश सम्राट् तथा उसकी पार्लामेंट के पास पहुँच गया।

## प्रश्न

१. कम्पनी-राज में भारत की दुर्दशा का वर्णन कीजिये।
२. पंचायती ग्राम-समाज का उन्मूलन क्यों किया गया ?

३. बंगाल की लूट से ब्रिटेन को क्या फायदा हुआ ?
  ४. ब्रिटेन की औद्योगिक-क्रान्ति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?
  ५. सन सत्तावन के स्वतन्त्रता-युद्ध के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?
  ६. सन सत्तावन के गदर के बाद भारत में कौन-कौन से राजनैतिक परिवर्तन हुए ?
  ७. टिप्पणी कीजिये—
    - (अ) तात्या टोपे ।
    - (ब) रानी लक्ष्मीबाई ।
    - (क) परम्परागत भारतीय ग्राम-व्यवस्था ।
-



## भारत में आधुनिक युग का उषाकाल । १३

अंग्रेजों ने प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था—सामन्त-व्यवस्था को बलपूर्वक नष्ट कर दिया । और उसके स्थान पर आधुनिक समाज-व्यवस्था के विकास की नींव डाली; इस लिए नहीं कि भारत को वे नये युग में लाना चाहते थे, वरन् इसलिए कि उसके बिना उनका स्वयं का अर्थ-तंत्र चला ही नहीं सकता था । इस प्रकार जाने-अनजाने ढंग से, अंग्रेजों ने भारत में बलपूर्वक ही क्यों न सही, आमूल सामाजिक क्रान्ति उपस्थित कर दी । भारत में नवीन व्यवस्था पर आधारित, आधुनिक ढंग की नयी समाज-रचना उपस्थित हो गई । सन सत्तावन के गद्दर के पहले ही, बंगाल में आधुनिक सभ्यता आरम्भ हो गई थी तथा शिक्षित मध्यवर्ग का उदय हो गया ।

अंग्रेजों ने प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था, सामन्त व्यवस्था को बलपूर्वक उखाड़ फेंका । भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी के जमाने में सन् १८४८ से १८५६ ई० ) भारत में रेलवे लाइनें बिछाई जाने लगीं । आधुनिक ढंग की डाक-व्यवस्था कायम की गई । तार भेजे जाने लगे । डलहौजी ने एक पृथक् शिक्षा-विभाग कायम किया । सिवा इसके आधुनिक ढंग का शासन-यंत्र भी काम करने लगा । सन् १८५७ के पूर्व, बंगाल में आधुनिक सभ्यता का आरंभ हो गया था । ऐसी न्याय-व्यवस्था कार्य करने लगी थी, जिसमें कानून के सामने व्यक्तियों की सामानता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था । अंग्रेजी ढंग की शिक्षा का भी प्रारंभ हो चुका था । सबसे पहले, ऐसी शिक्षा ईसाई मिशनरी दे रहे थे भारत में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित वर्ग सामने आ गया था । इस वर्ग का सामान्य जनता से विशेष सम्बन्ध न था । किन्तु यह नव शिक्षित वर्ग पाश्चात्य ज्ञान

को आत्मसात् करके आगे बढ़ना चाहता था। सन् १८८० ई० के आसपास, दंगल के कुछ विचारक शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने लगे। उनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजा राम मोहन राय के नाम प्रमुख हैं। कम्पनी सरकार ने कलकत्ते में संस्कृत कालेज की स्थापना की तो इसका विरोध करते हुए राजा राममोहन राय ने अपने स्मरण-पत्र में सरकार से अनुरोध किया कि गणित, रसायनशास्त्र, प्राकृतिक दर्शन, शरीर रचना-शास्त्र तथा अंग्रेजी साहित्य पढ़ाने की व्यवस्था तुरन्त होनी चाहिए। अंग्रेजी तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की माँग बढ़ती ही गई। फलतः, धीरे-धीरे अंग्रेजी स्कूल खुलते गये तथा क्रमशः पाश्चात्य ढंग की शिक्षा का प्रचार भारत में होता गया।

पश्चिम के सम्पर्क में आये हुये भारतीयों ने अब छापेखाने शुरू किये। किताबें निकलने लगीं। राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' नामक समाचार-पत्र की स्थापना की। इसका एक पृष्ठ हिन्दी में निकलता था। उधर अंग्रेजों ने कई समाज-सुधार भी किये। अंग्रेज गवर्नर जनरल बैटिंग ने सती-प्रथा बन्द कर दी। भारत में दास-प्रथा भी गैर कानूनी हो गई। बैटिंग के शासन-काल में जमीन की पैमाइश भी की गई।

इन सब के परिणाम स्वरूप भारत में एक नया शिक्षित मध्य-वर्ग निकल आया। यह मध्य-वर्ग भारत के सभी प्रान्तों में थोड़ा बहुत था। किन्तु उसका सबसे अधिक जोर अंग्रेजी शिक्षा के केन्द्रों में जैसे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में रहा आया।

**सुधारवादी आन्दोलन :**—पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित होकर, इस वर्ग ने जड़ोभूत सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया; रूढ़ि को ईश्वर प्रेम से पृथक् किया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की। एक नया समाज, प्रार्थना-समाज भी चल पड़ा। ये आन्दोलन सामाजिक एवं धार्मिक सुधार चाहते थे। इनका प्रभाव कुछ ही शिक्षित लोगों पर था। शिक्षित जनता में से कुछ लोग ऐसे थे जो रहन-सहन, चाल-ढाल में अंग्रेजों की नकल करते थे। समाज उनकी निन्दा करता था। ये लोग—वह मध्यवर्ग था जो कम्पनी सरकार के दफ्तरों में बाबू बना हुआ था।

**संस्कृति का प्रभाव :—**उधर भारत में आये हुए अंग्रेजों में से कुछ लोग भारतीय विद्या, धर्म और दर्शन से प्रभावित हुए। अब तक मिशनरियों ने यहाँ के सम्बन्ध में यूरोप में भ्रम का प्रचार कर रखा था। बैटिंग, आकलैण्ड, ग्रैण्ट और मैकाले सरीखे लोगों ने भी उन्हीं भ्रमपूर्ण बातों का समर्थन किया था। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स, प्रिन्जेप, जोन्स, मिंटो, विल्सन जैसे भी लोग थे जिन्होंने अपने अध्ययन द्वारा भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। फलतः, अंग्रेजों में भारतीय विद्या का व्यापक अध्ययन शुरू हुआ। विलियम जोन्स ने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद किया, स्वयं विश्वविख्यात जर्मन कवि गेटे ने इस अनुवाद को पढ़ कर प्रशंसा के अनुपम उद्गार निकाले थे। उधर मैक्समूलर ने वेदों का अनुवाद किया। सन् १८०१-२ में उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद हुआ, जिसे पढ़ कर शौपेनहावॉर नामक जर्मन दार्शनिक बहुत प्रभावित हुआ। तब से यूरोप में पाश्चात्य दर्शन पर भारतीय दर्शन का प्रभाव पड़ने लगा। यूरोप में संस्कृति भाषा का जोरों से अध्ययन प्रारम्भ हुआ। और यह जानकर यूरोप में प्रसन्नता की लहर फैल गई कि संस्कृत भी ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं की सगी बहन है। यूरोपियनों द्वारा संस्कृति के अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि ज्ञान की एक नयी शाखा फूट पड़ी, जिसे 'भाषाशास्त्र' कहा जाता है। इधर भारत में उन्हीं दिनों, बी० जी० भण्डारकर, राजेन्द्र लाल मित्रा, के० टी० तेलंग और रानाडे सरीखे महान् विद्वान् उत्पन्न हुए। यह कहना बिलकुल सही है कि 'यदि अंग्रेजी शिक्षा पूर्व को पश्चिम की व्याख्या दे रही थी तो ये पूर्वीय विद्वान् एक और पश्चिम को तो दूसरी ओर पूर्व को पूर्व ही की व्याख्या दे रहे थे।'

सन् १८५७ के इधर या उधर, जो नेता मैदान में आये उनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय विवेकानन्द, दादा भाई नौरोजी, सर सैयद अहमद खाँ नई सांस्कृतिक सामाजिक जागृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

खून से लथपथ होकर ही क्यों न सही, भारत ने नये युग में प्रवेश किया। ल्योंही वह नये प्रकाश में आया, उसकी प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा भी यूरोप में

फैल गई। साथ ही भारतीय समाज-सुधारकों और विद्वानों का एक ऐसा नया दल सामने आया जिसने भारतीय कीर्ति को और भी विकसित तथा प्रसारित किया।

### प्रश्न

१. लॉर्ड डलहौजी को किस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए ? वह कब हुआ था। उसके कार्यों का क्या परिणाम हुआ ?
२. सन् १८५७ के पहले आधुनिक सभ्यता विशेष रूप से कहाँ प्रकट हुई ?
३. अंग्रेजी शिक्षा को माँग करने वाले कौन थे ?
४. प्राचीन भारतीय संस्कृति के योरोपीय तथा भारतीय विद्वानों के बारे में आप क्या जानते हैं ?
५. शिक्षित मध्य-वर्ग ने अंग्रेज सरकार के सामने कौन सी माँगे रखीं ?
६. टिप्पणी लिखिये—

(१) राजा राममोहन राय, (२) मैक्समूल, (३) भाषाशास्त्र ।

— — —

## राष्ट्रीय चेतना का विकास : प्रथम चरण । १४

[ क्रमशः भारत में समाज-सुधार तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान की प्रक्रियाओं ने शिक्षित जनता में आत्म-गौरव तथा आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न कर दी । राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ । काँग्रेस की स्थापना हुई । बंग-भंग-विरोधी आन्दोलन से, देश में नई राष्ट्रीय चेतना की लहरें फैलने लगीं । गोखले सरीखे नरम दली और बाल गंगाधर तिलक सरीखे गरम दली लोग सामने आये । देश में राष्ट्रीय उत्साह का वातावरण फैल गया । ]

प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता युद्ध की परिसमाप्ति के अनन्तर, भारत का शासन ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया और वहाँ की पार्लामेंट के हाथ में आ गया । उन्होंने घोषणा की किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा ।

किन्तु जनजीवन में गहरा असंतोष था । यह तत्कालीन साहित्य से देखा जा सकता है । बंगाल के उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी और हिन्दी के महान् लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में यह असन्तोष स्पष्ट रूप से झलकता है । किन्तु यह भी सच है कि विक्टोरिया के शासन-काल में शान्ति रही । नया मध्यवर्ग पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करता रहा, शिक्षा का भी विकास और प्रसार होता रहा । उच्च शिक्षा-प्राप्त-युवकों में एक ओर पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान शीघ्रसे शीघ्रआत्मसात् करने की प्रवृत्ति रही तो दूसरी ओर अपने प्राचीन धर्म और दर्शन के गौरव का भाव भी बढ़ता रहा । उधर रेलवे लाइनें फैलती रहीं । नये मध्यवर्ग को नौकरियाँ मिलती रहीं । सामान्य-जन अंग्रेजों के ज्ञान-विज्ञान से बहुत प्रभावित हुए । आवागमन के साधनों की प्रचुरता के कारण, विभिन्न

प्रान्त परस्पर सम्पर्क में पहले से ज्यादा आने लगे । एक प्रान्त की विचारधारा दूसरे में फैलने लगी । अखबारों और मुद्रणालयों की संख्या बढ़ गई । किन्तु, अंग्रेज सरकार की नीति देशी उद्योगों को बढ़ावा देने की नहीं थी । उन दिनों हम लोग लंकाशायर की धोतियाँ पहनते थे । इस प्रकार के कर लगा दिये गये थे कि जिससे एक प्रान्त में बना माल दूसरे प्रान्त में अंग्रेजी माल से मँहगा बिके । हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थ-व्यवस्था का एक अंग बन गया था ।

उधर अंग्रेजों ने अपने कारखाने भारत में खोल दिये । बंगाल की जूट-मिलें, कानपुर और बम्बई की सूती मिलें, मैंगनीज और कोयले की खदानें तथा अन्य उद्योग अंग्रेजों के हाथ में थे । साथ ही आसाम के चाय-बागान, नीलगिरि की काफी के खेत इत्यादि ब्रिटिश स्वामित्व के अन्तर्गत थे ।

फलतः एक नया भारतीय मजदूर वर्ग निकल आया । इधर, धीरे-धीरे भारतीय औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के उदय के लक्षण भी दिखाई देने लगे । लोग अब मजदूरी के लिए गाँवों से शहरों की ओर जाने लगे । मध्य-वर्ग के लोग भी नौकरियों की तलाश में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जा बसे । संयुक्त परिवार के बन्धन ढीले पड़ गये । खेती का भी विस्तार किया गया । सिंचाई के साधनों का भी विकास हुआ । गंगा और गोदावरी नदियों से नहरें निकाली गईं । नहरें निकालने की ब्रिटिश कम्पनियाँ थीं । उन्हें खूब लाभ हुआ । इन योजनाओं से जनता को भी फायदा हुआ ।

इन सब का कुल मिलाकर परिणाम यह हुआ कि विक्टोरिया रानी के राजत्वकाल के ३० वर्षों तक भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर विचार करने का किसी को साहस नहीं हुआ । सन् १९०६ में प्रथम बार कलकत्ता कांग्रेस के प्लेटफार्म से दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया ।

रानी विक्टोरिया के जमाने में नया उठता हुआ मध्यवर्ग—पुराने श्रीमान् वर्गों में से ही पैदा हुआ था। वह तो इतना ही चाहता था कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में उसे अधिक स्थान मिले। इसलिए वह अंग्रेजों से फर्याद करने लगा। उन्हें दरखास्त देने लगा। वह सिर्फ सुधारों की माँग ही तो कर सकता था। किन्तु ऐसी माँग करने वाला यह वर्ग सुशिक्षित था, उसमें साम्प्रदायिकता नाम के लिए भी नहीं थी।

**राष्ट्रीय राजनैतिक चेतना का प्रथम स्पन्दन :—**भारतीय सुशिक्षित जनता अंग्रेजों से किसी तरह भी कम प्रतिभाशाली नहीं थी। अंग्रेजों की अधीनता में काम करना, उनके भी गौरव के विरुद्ध था। इसलिये मन के भीतर अंग्रेजों के विरुद्ध एक भावना तो रहती ही थी। उधर भारतीय धर्म, दर्शन, गणित, विद्या आदि का पश्चिम में जो स्वागत और सम्मान हुआ, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र आदि कलाओं ने यूरोप में जो कीर्ति-लाभ किया, उससे इस सुशिक्षित मध्य वर्ग में नया आत्म-गौरव और नया आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ।

किन्तु भारत की मूर्तिमान वास्तविकता यह थी कि भारत पराधीन हो गया था। अंग्रेज डिप्टी कलेक्टर 'राजा' हो गया था। उसकी अधीनता में आदि बनना ज्यादा पसन्द करते थे।। इसलिए ये लाग अपेक्षाकृत स्वाधीनता काम करने के बजाय, सुशिक्षित वर्ग में से बहुतेरे लोग वकील-वैरिस्टर, डॉक्टर बरत सकते थे।

यह वर्ग अपने विचारों का प्रचार चाहता था। अंग्रेजों के जो अखबार थे, उन पर तो कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई थी, किन्तु देशी भाषाओं के पत्रों पर विशेष प्रतिबन्ध था। भारतीयों के विरुद्ध इस प्रकार के जो अनेकानेक प्रतिबन्ध थे उनके विरोध में जन-मत निर्माण करने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सन् १८७६ में कलकत्ते में 'इण्डियन एसोसियेशन' नामक संस्था बनाई। उसका उद्देश्य था—भारतीय युवकों में देश-सेवा का भाव निर्माण करना और देश के हितों के लिए कार्य करना। कुल मिलाकर शासन-यंत्र में भारतीयों

को अधिकाधिक नौकरियाँ दिलाना और इस प्रकार उस शासन को भारतीय जनता के अधिक अनुकूल बनाना—यही इस संस्था का लक्ष्य था ।

**कांग्रेस की स्थापना :**—एक उदारवादी अंग्रेज सर आक्टेवियस ह्यूम तथा अन्य भारतीयों के प्रयत्नों से सन् १८८५ में भारतीय 'राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई । इसकी सभाएँ, सामान्यतः बड़े-बड़े नगरों में होतीं । शिकायतों के आधार पर प्रस्ताव बनाये जाते । कांग्रेस का उद्देश्य था—विभिन्न जातियों और समुदायों में राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना; इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए, राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक उन्नति और विकास के द्वारा राष्ट्र में पुनर्जागरण उत्पन्न करना भारत तथा ब्रिटेन, इन दो देशों के बीच मैत्री स्थापित करके भारतीय हितों के विरुद्ध की जाने वाली बातों को हटाना ।

इन उद्देश्यों को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि शुरू में कांग्रेस सुधारवादियों के हाथ में थी । अभी उसमें कोई देश-व्यापी आन्दोलन छेड़ने का साहस नहीं आ पाया था । फिर भी शुरू में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या, जो सिर्फ ७८ थी वह बढ़ते-बढ़ते तीन वर्षों में ही १८४८ हो गई । इधर कांग्रेस गवर्नर जनरल की केन्द्रीय विधान-समिति में भारतीय प्रतिनिधियों को स्थान दिलवाने का प्रयत्न करने लगी । लॉर्ड रिपन ने ( १८८०-१८८४ ) में देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटा कर, विचार-स्वातंत्र्य के लिए कुछ अधिक अवकाश दिया । सन् १८९२ में पार्लामेंट ने, भारत को म्यूनिसिपैलिटियों में चुनाव द्वारा, लोक-प्रतिनिधि भेजने की इजाजत दे दी । इन लोक-प्रतिनिधियों को वार्षिक आय-व्यय पर बहस करने की तथा महत्वपूर्ण घटनाओं पर वादविवाद करने के भी छूट दे दी गई ।

किन्तु इस बीच भारत में बढ़ते हुए जन-जागरण से घबराकर अंग्रेज शासक देश में फूट पैदा करने की तजवीजों पर विचार करने लगे । अब बात यह थी कि भारत में पहले राज्य-भोग किये हुए दो वर्ग थे—हिन्दू और मुसलमान । इन दोनों को एक-दूसरे से अलग करने की नीति का समर्थन करने वाले अंग्रेज शासक मैदान में आये । लॉर्ड कर्जन ने सन् १९०५ में, हिन्दू और मुस्लिम जनसंख्या के आधार पर, बंगाल के दो टुकड़े कर दिये ।



बंग भंग के परिणाम—लेकिन लॉर्ड कर्जन को मुँह की खानी पड़ी । अभी भारत में हिन्दू मुस्लिम-एकता बाकी थी । बंग-भंग से बंगाल के आर्थिक हितों पर कुठाराघात होता था । इसलिए देश में बंग-भंग के विरुद्ध असन्तोष पैदा होने लगा । शीघ्र ही इस असन्तोष ने देश-व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया । दक्षिण में, प्रसिद्ध लोक-नेता बाल गंगाधर तिलक बंग-भंग के विरोध में जबर्दस्त आन्दोलन किये । उधर, पंजाब में लाला लाजपत राय ने जोर-शोर से बंग-भंग के विरुद्ध जनमत पैदा किया । यह आन्दोलन बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र के केन्द्रों से देशभर में फैल गया । इस आन्दोलन से भारतीय जनता में अपूर्व जागृति हुई । उदार-मत-वादी नेता गोखले भी अब लॉर्ड कर्जन की तुलना औरङ्गजेब से करने लगे ।

किन्तु अंग्रेजों ने एक न सुनी । इस बीच कुछ ऐसी घटनाएँ हो गईं जिनसे भारतीय जनमत पर गहरा असर पड़ा । सन् १९०५ में जापान जैसे छोटे एशियायी देश ने रूस जैसे बलशाली और विस्तृत देश को लड़ाई के मैदान में पछाड़ दिया । इसका निष्कर्ष यह निकाला गया कि ब्रिटिश साम्राज्य जैसी प्रचण्ड शक्ति भी भारत द्वारा नष्ट की जा सकती है ।

इसी प्रकार, इटली के राष्ट्र पुरुष मैजिनी ने अपने देश को जब स्वतंत्र कर दिया तो उसका भी प्रभाव भारत पर पड़ा । आयरलैण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन से भी भारत ने प्रेरणा ग्रहण की अब यह निश्चित माना जाने लगा कि भारत के अधःपतन और अवनति का मूल कारण अंग्रेज हैं । ब्रिटेन में लङ्का-शायर नगर के उद्योगपतियों के हित के लिए, भारतीय उद्योग धन्धों पर लगाई गई एक्साइज ड्यूटी, अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों में गये हुए तथा उसी प्रकार कनाडा गये हुए भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का इसलिए कड़ा व्यवहार था कि वे काले हैं इत्यादि बातों की ओर देश का ध्यान टिक गया । फिर लॉर्ड कर्जन ने बंग-भंग रद्द करने के बजाय लोकमत को कुचलने की कोशिशें कीं । फलतः सन् १९०५ ई० में बनारस में गोखले की अध्यक्षता में जो कांग्रेस अधिवेशन

हुआ, उसमें यह साफ दिखाई देने लगा कि अब सुधारवादी नरम नीति से काम नहीं चलेगा, वरन् उसके लिए दूसरे उपायों को खोजना जरूरी है। उधर बंगाल की जनता ने आगे बढ़कर विदेशी माल के बहिष्कार का एक विशाल आन्दोलन खड़ा कर दिया। उसके अगले साल के काँग्रेस अधिवेशन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को मान्यता भी दी। यह अधिवेशन सन् १९०६ में महर्षि दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ था।

धीरे-धीरे अब काँग्रेस के भीतर दो दल सामने आये—एक नरम, दूसरा गरम। गरम का नेतृत्व लोकमान्य तिलक कर रहे थे। नरम दल का नेतृत्व बैरिस्टर गोखले। उधर, आयरलैंड के स्वाधीनता आन्दोलन में आतंकवाद का भी प्रयोग हुआ, जिसके फलस्वरूप, हमारे यहाँ भी आतंकवादी प्रवृत्तियाँ जाग उठीं। इधर, बहुतेरे प्रख्यात नरमदली नेताओं का देहावसान हो गया था। गरम दली नेता चाहते थे कि जनता में बड़े पैमाने पर संगठित रूप से आन्दोलन किया जाय, जिसमें ब्रिटिश माल के बहिष्कार को भी स्थान मिले। सन् १९०७ में सूरत में काँग्रेस अधिवेशन हुआ। उसमें, गरम और नरम दली लोगों के बीच न सिर्फ मतभेद हुआ, वरन् आपस में झगड़ा हो गया। अधिवेशन भंग हो गया। गरम दल वाले काँग्रेस से निकल गये। उधर बैरिस्टर गोखले, मदन मोहन मालवीय और फीरोजशाह मेहता ने अपने अनुयायियों की सभा करके काँग्रेस के नये ध्येय की रूप रेखा निश्चित की। उन्होंने माँग की कि जिस प्रकार, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में कनाडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि को डोमिनियन स्टेट्स मिला हुआ है, उसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत, भारत को भी स्थान प्राप्त हो, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैधानिक पद्धति से कार्य किया जाय।

किन्तु, उधर तिलक ने देश को नारा दे दिया था—स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। देश का अविष्य तिलक के साथ था, यह बेचारे अंग्रेजों को क्या मालूम।

### प्रश्न

१. रानी विक्टोरिया के काल में भारत की दशा का वर्णन कीजिए ।
२. राष्ट्रीय चेतना के प्राथमिक विकास पर प्रकाश डालिए । उन दिनों शिक्षित मध्यमवर्ग की माँगें कौन सी थीं ?
३. बंग-भंग करने के पीछे अंग्रेजों की नीति क्या थी ? वह क्यों किया गया ?
४. बंग-भंग, विरोधी आन्दोलन पर प्रकाश डालिए और बताइये कि उसने क्यों जोर पकड़ लिया ।
५. तत्कालीन राष्ट्रीय राजनैतिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए ।
६. भारत की शिक्षित जनता पर उन दिनों किन अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का प्रभाव हुआ ।
७. टिप्पणी कीजिए—
  - (अ) बाल गंगाधर तिलक
  - (ब) गोखले
  - (क) लॉर्ड कर्जन
  - (ड) लॉर्ड रिपन

## राष्ट्रीय चेतना का विकास : द्वितीय चरण । १५

[ महात्मा गाँधी के महान् नेतृत्व में राष्ट्रीय चेतना को लहरें अपार और दुर्निवार होने लगीं । इस राष्ट्रपुरुष ने देश की आत्मा का प्रतिनिधित्व किया और अन्त में स्वाधीनता दिलायी ।

इस बीच अंग्रेज सरकार, एक ओर जनता का भयानक दमन करती तो दूसरी ओर, सम्प्रदायवादियों के जरिए देश में फूट फैलाती । आखिरकार देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई । पाकिस्तान का निर्माण हुआ । इस प्रकार दक्षिण एशिया का एक बृहद् भाग अंग्रेजों के पंजे से निकल गया । ]

तिलक के उग्रवादी रुख से चिढ़ कर अंग्रेजों ने ( उन्हें जेल में तो कई बार डाला था ) अब दूसरे तरीके इस्तेमाल किये । भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन अब तिलक से प्रेरणा पा रहा था । उधर लाला लाजपत राय शेर पंजाब कहलाते थे । बंगाल में पाल महोदय का प्रभाव विस्तृत हो गया था । लाल-बाल-पाल गरम दली लोग थे, जो प्रथम अखिल भारतीय नेताओं के रूप में सामान्य जनता में सम्मानित हुए ।

प्राचीन भारतीय धर्म तथा दर्शन के व्यापक अध्ययन के फलस्वरूप भारत अपने को प्राचीन सांस्कृतिक गौरव से सम्बद्ध करने लगा । उसी प्रकार मुस्लिम धर्म दर्शन आदि के अध्ययन के फल स्वरूप मुस्लिम विद्वान भी अपने को पूर्वतर इस्लामिक अभ्युत्थान से सम्बद्ध करने लगे । इस प्रकार हमारे राष्ट्रवाद में हिन्दू संस्पर्श और मुस्लिम संस्पर्श उत्पन्न हुआ ।

यह संभव था कि ये पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ हिन्दू और मुस्लिम रहते हुये भी परस्पर-मैत्री के सूत्र में मुंथी-विंधी रहती । परन्तु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त

युवक अंग्रेजों के बनाये इतिहास ग्रन्थ पढ़ते थे। इन ग्रन्थों में हिन्दुओं की और मुसलमानों की भावनाएँ एक दूसरे के विरुद्ध उभाड़ने की कोशिश की गई थी। अंग्रेजों की नीति ही यह थी कि इन दोनों जातियों में कभी एकता न हो।

उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का प्रचार करके दोनों जातियों में मनोमालिन्य बढ़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु बंग-भंग विरोधी आन्दोलन ने हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम कर दी थी। इसे तोड़ने के लिए जरूरी था कि कोई नई संस्था कायम की जाय। फलतः, अंग्रेजों ने अपना एक खास आदमी—सर आगा खान को चुना। उसके हाथों सन् १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई।

अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन बढ़ता ही गया और जनता में असन्तोष पैदा होने के नये-नये कारण सामने आने लगे। सरकार ने कुछ समाचार-पत्रों की उग्र भाषा देखकर उनके खिलाफ मामले चलाये। इस बीच, रावलपिण्डी, लाहौर तथा पंजाब के अन्य स्थानों में सरकार के विरुद्ध उग्र प्रदर्शन हुए। सरकार ने लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को जेल में डाल दिया। उधर बंगाल के मुजफ्फरपुर में बम का विस्फोट हुआ! इस विस्फोट के फलस्वरूप कुछ अंग्रेज मारे गये। भारत में वह पहला राजनैतिक बम विस्फोट था।

इस बम विस्फोट पर तिलक ने अपने साप्ताहिक पत्र 'केसरी' में एक राजनैतिक लेख लिखा, जिसके फलस्वरूप उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्हें छः साल के लिए मण्डाले जेल भेज दिया गया। उधर प्रेस एक्ट के द्वारा, सरकार की उग्र आलोचना पर पाबन्दी लगा दी गई। सभाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाये गये।

इस प्रकार भारत में अंग्रेजों ने दमन द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलना चाहा। लेकिन भीतर ही भीतर आग सुलगती रही।

एक ओर दमन किया गया किन्तु दूसरी ओर अंग्रेज ऐसे भारतीयों को जो उनसे हाथ मिलाने के लिए तैयार हों; उन्हें अपने साथ लाने के लिए कुछ वैधानिक सुधार किये। मॉर्ले मिण्टो सुधार के अन्तर्गत, प्रान्तीय विधान सभाएँ

बनीं, प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल बनाने की व्यवस्था की गई उसी प्रकार केन्द्रों में एक लेजिस्लेटिव एसेम्बली तथा कौन्सिल ऑफ स्टेट—राज्य परिषद् बनाई गई। ये सुधार निःसार थे। सारी शक्ति गवर्नरों के और गवर्नर जनरल ( अब वह वाइस राय कहलाने लगा था ) के हाथ में थी।

**जलियाँवाला बाग**—उधर ब्रिटिश सरकार ने डॉक्टर सत्यपाल और डॉक्टर सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार करके प्रान्त से निकाल दिया था। इसके विरोध में अमृतसर में लोगों ने प्रदर्शन किया। दूसरे दिन, एक मेले में बहुत से गाँव वाले जमा हुए। ब्रिटिश सरकार ने सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु, बावजूद इसके सभा हुई। ओ डायर नाम के अंग्रेज जनरल ने मानव-हत्या का एक कलंकपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने शान्तिपूर्ण जन-समूह पर १६०५ गोलियाँ दागीं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, ३७८ लोग वहीं के वहीं मर गये और १२०० के ऊपर बुरी तरह जख्मी हुए। जो जख्मी हुए उन्हें अस्पताल नहीं ले जाया गया। इस मानव-हत्या की अनुमति पंजाब सरकार ने दे रखी थी। ओ डायर का बाल बाँका नहीं हुआ। यही नहीं, जलियाँवाला बाग की घटना सुन कर, जब गुरुदास पुर ५ लोग उत्तेजित होकर सड़कों पर जमा होने लगे तो उस नगर पर और समीपवर्ती गाँवों पर बम बरसाये गये और लगभग ढाई महीने मार्शल लाँ लगा दिया गया। यह घटना सन् १९२० की है।

**खिलाफत आन्दोलन**—सारे देश में, अंग्रेजों के विरुद्ध रोष छा गया। सब जगह उनका धिक्कार किया गया। इस बीच देश में खिलाफत आन्दोलन चल पड़ा। तुर्किस्तान का बादशाह, इस्लाम के अन्तर्गत 'खलीफा' ( सर्वोच्च धर्माधिपति ) भी था। सन् १९१४ की लड़ाई में जर्मनी के साथ, तुर्किस्तान भी हार गया था। इसलिये, अंग्रेजों ने तुर्किस्तान के बादशाह के अधिकार कम कर दिये थे। खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुस्लिम भावनाओं के अनुकूल था। उसके उद्देश्य तुर्की के साथ किये गये ब्रिटिश दुर्व्यवहार का विरोध करना था। उसके नेता मुहम्मद अली और शौकत अली थे। महात्मा गाँधी, जो

पहले दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को वर्ण द्वेष के विरुद्ध मानवोचित अधिकार दिलाये जाने के सम्बन्ध में आन्दोलन कर रहे थे, अब भारत आ चुके थे। देश के महान् नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की (सन् १९२० में) मृत्यु हो चुकी थी। महात्मा गाँधी ने, खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया। वे अब अली-बन्धुओं के साथ देश में धूम-धूम कर, राष्ट्रीय प्रचार करने लगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई और राष्ट्रीय चेतना की लहरें देश भर में फैलने लगीं।

**असहयोग और सत्याग्रह**—इस आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्त्व है। उसके दौरान में महात्मा गाँधी ने जनता के सामने तीन सिद्धान्त (१) असहयोग, (२) सत्याग्रह और (३) अहिंसा—सामने रखे। असहयोग का अर्थ है—अंग्रेजों की कोर्ट-कचहरियों, नौकरियों और शिक्षालयों को त्याग देना—प्रशासित कार्य में अंग्रेजों से कोई सहयोग न करना—यह असहयोग का सिद्धान्त था। अंग्रेजों को कर न देना, दमन का सामना शान्तिपूर्वक करते जाना—यह सत्याग्रह है। असहयोग और सत्याग्रह अहिंसात्मक पद्धति ही से होना चाहिए। उन दिनों बार डोली का सत्याग्रह बहुत गूँजा।

गाँधी जी का यह आन्दोलन सन् २० का आन्दोलन कहलाता है। सारे देश में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में यह आन्दोलन चला। किन्तु कुछ जगहों पर—उसका रूप अहिंसात्मक न रह सका, विशेष कर, चौरीचौरा में। गाँधी जी ने अहिंसा-सिद्धान्त का पालन न होते देख, उसे वापिस ले लिया।

अंग्रेज तो मौका देख ही रहे थे। आन्दोलन ढीला पड़ते ही उनकी प्रेरणा से स्थान-स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे करवाये गये (एक भयानक दंगा मालावार में हुआ), उधर राष्ट्रीय नेताओं को जेल में ठूस दिया गया।

अंग्रेजों ने महात्मा गाँधी को गिरफ्तार कर छः साल के लिए जेल में डाल दिया। मुहम्मद अली तथा शौकत अली को लम्बी सजा दी गई। इधर एक राष्ट्रीय नेता चित्तरंजन दास कैद से छूटे। उन्होंने नई बनाई गई स्वराज्य पार्टी के द्वारा विधान मण्डलों में जाकर, जनता की आवाज बुलन्द करने की ठानी।

सन् १९२४ में जेल में महात्मा गांधी बीमार पड़ गये । इसलिए उन्हें छोड़ दिया गया । उधर स्वराज्य पार्टी केन्द्रीय एसेम्बली में जाकर जनता की भावनाएँ प्रकट करने लगी ।

**नेहरू कमेटी**—कांग्रेस ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में नेहरू कमेटी कायम की थी, जिसका उद्देश्य स्वराज्य की रूपरेखा बनाना था । सन् १९२६ में कांग्रेस ने घोषणा कर दी कि अगर भारत को एक साल के भीतर 'स्वराज्य' ( डोमिनियन स्टेट्स ) नहीं दिया गया तो वे पूर्ण-स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रस्ताव पास करेगी ।

उन दिनों अंग्रेजों ने भारतीय स्वायत्तशासन सम्बन्धी प्रस्तावों के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया था । वह सालों तक काम करता रहा, नतीजा कुछ न निकला । पंजाब की जनता ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया । उग्र प्रदर्शन हुए । लाठी चार्ज हुआ । इसके फलस्वरूप पंजाब के वीर नेता लाला लाजपत राय बुरी तरह घायल हुए । शीघ्र ही उनका देहान्त हो गया ।

सारे देश का वातावरण गरम हो गया । आतंकवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं । इस बीच, किसी आतंकवादी ने केन्द्रीय एसेम्बली में पब्लिक गैलरी में से बम का गोला फेंक दिया ।

इस उत्तेजित वातावरण पर ठण्डा पानी डालने के लिए, अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड में गोलमेज परिषद् आयोजित किये जाने का एलान किया । महात्मा गांधी ने भी घोषित किया कि अगर सन् ३० के भीतर डोमिनियन स्टेट्स नहीं दिया गया तो सत्याग्रह शुरू कर दिया जायेगा ।

**सविनय अवज्ञा**—महात्मा गांधी ने अब नमक सत्याग्रह शुरू किया । अंग्रेजों ने नमक पर कर लगाया था । नमक सम्बन्धी कानून को तोड़ने के लिए गांधी जी स्वयं सेवकों के एक दल के साथ दाण्डी गये और वहाँ जाकर कानून भंग किया । उस दिन से सरकारी कानून तोड़ने की एक मुहीम चल पड़ी ।



हजारों स्वयं सेवक देश भर में कानून तोड़ने लगे और जेल गये। उसके बाद, जंगल सत्याग्रह शुरू हुआ। ब्रिटिश माल के बहिष्कार का आन्दोलन देश व्यापी हो गया। मद्य निषेध का आन्दोलन भी जोरों से चल पड़ा। उधर अंग्रेज सरकार ने जुलूस निकालने, सभा आयोजित करने इत्यादि पर भी कई नगरों में रोक लगा दी। यहाँ तक कि एक जुलूस का नेतृत्व करते हुये पण्डित मदन मोहन मालवीय को भी कैद करके जेल में डाल दिया गया।

चूँकि यह आन्दोलन कांग्रेस द्वारा चलाया जा रहा था, इसलिए कांग्रेस कार्यकारिणी गैर कानूनी बना दी गई। कांग्रेस के सदस्यों पर मुकदमे चला चला कर उन्हें जेल में डाला जाने लगा।

**गोलमेज परिषद्**—उधर, इंग्लैंड में लेबर पार्टी के नेता मैकडोनल्ड प्रधानमंत्री थे। कुछ नेताओं तथा अंग्रेजों की कोशिश से यह सुझाव सामने आया कि प्रान्तीय विधान सभाओं तथा केन्द्रीय विधान-सभा को अधिक अधिकार दिये जाँय और कांग्रेस वैधानिक तरीके से काम करे। इसलिए, लन्दन में एक गोलमेज परिषद् बुलाई गई। कांग्रेस ने सत्याग्रह बन्द कर दिया और महात्मा गाँधी आदि नेता गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन गये। इस गोलमेज परिषद् को दूसरी गोलमेज परिषद् कहते हैं।

इस परिषद में महात्मा गाँधी कांग्रेस की तरफ से प्रतिनिधि थे।

अंग्रेज तो सिर्फ समय चाहते थे जिससे कि वे भारत में ऐसी शक्तियों को प्रोत्साहन दे सकें कि जो शक्तियाँ बढ़ते हुये राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में बाधा डाल दे। हुआ यही, गोलमेज परिषद् में, हिन्दू प्रतिनिधित्व मुस्लिम प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठाया गया, यहाँ तक कि अस्पृश्यों को अलग प्रतिनिधि दिये जाने का प्रस्ताव भी रखा गया। भारत को अनेक विभेदों में डाल कर, उसकी राजनैतिक एकता को छिन्न-भिन्न करने का यह तरीका था। गाँधी जी निराश होकर गोलमेज परिषद् से लौट आये। देश में आते ही गाँधी जी को जेल में डाल दिया गया। नेहरू को भी जेल दी गई। सरकार अब विशेष आदेशों-अध्यादेशों—के द्वारा राज करने लगी। लगभग ३० हजार नेता जेल पहुँचे। किन्तु धीरे-धीरे सत्याग्रह आन्दोलन शिथिल होता चला गया।

कारावास में गाँधी जी ने आत्मशुद्धि के लिए अनशन शुरू किया। इस भय से कि कहीं गाँधी जी को कुछ हो गया तो जनता भड़क उठेगी, उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। गाँधी जी ने बाहर आकर, कुछ दिनों बाद सामुदायिक सत्याग्रह बन्द करके, व्यक्तिगत शुरू किया।

उधर, अंग्रेज सरकार ने एक नया विधान लागू किया। अब भारत के सभी प्रान्तों में विधान-सभाएँ बन गईं। उन्हें पहले से ज्यादा अधिकार दिये गये इन प्रान्तों के ऊपर एक दो केन्द्रीय सभाओं विधान-सभा और राज्य परिषद् बनी। उसे पहले से अधिक अधिकार दिये गये। यह प्रस्तावित हुआ कि सम्पूर्णतः भारतीय मन्त्रिमंडल बने जो विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी रहे। किन्तु, महत्व की बात यह है कि इन सभाओं को प्रतिरक्षा विभाग, विदेश विभाग, ईसाई धर्म विभाग नहीं दिये गये, तथा विभिन्न रियासतों के प्रश्नों पर विचार करने के अधिकार भी इन्हें नहीं दिये गये। दूसरी ओर गवर्नर जनरल के भी अधिकार बढ़ा दिये गये। वह मन्त्रिमण्डल की सलाह को ठुकरा सकता था। ब्रिटिश कारखानों को नुकसान पहुँचाने वाले या उनके व्यापार में बाधा डालने वाले प्रस्ताव विधान-सभा ने पास किये तो गवर्नर जनरल उन्हें नामन्जूर कर सकता था।

सिर्फ एक बात थी। प्रत्यक्ष मतदान पद्धति के स्थान पर अप्रत्यक्ष मतदान पद्धति अमल में लाई गई। यह अच्छी बात थी, किन्तु वास्तविक अधिकार तो अंग्रेजों के ही हाथ में रहे आये कुछ ऐसे विषय भारत को दे दिये गये, जिनका सम्बन्ध देश के भीतरी मामलों से था ( ब्रिटिश व्यापार, देशी रियासतों आदि को छोड़ ) जैसे शिक्षा, राजस्व इत्यादि। इसके अतिरिक्त सारे ब्रिटिश स्वार्थों को, लोक-प्रतिनिधियों के प्रभाव से मुक्त रखा गया था। उसी प्रकार, प्रान्तीय विधान-सभाओं में मुसलमानों, अछूतों, सिक्खों ईसाइयों, एंग्लो-इण्डियनों, यूरो-पियनों और स्त्रियों के लिए पहले ही से स्थान निश्चित कर दिये गये थे। अंग्रेज जातीय आधार पर निर्वाचन चाहते थे। वे समुदाय को अधिक से अधिक बढ़ावा देना चाहते थे, जिससे कि वे एक गुट को दूसरे गुट के खिलाफ करते हुए, अपना शासन कायम रख सकें।

कांग्रेस ने एक बार अपनी शक्ति नापने की सोची। प्रान्तीय विधान-सभाओं के लिये कांग्रेस ने चुनाव लड़े। भारत के लगभग सभी प्रान्तों से यहाँ तक कि सीमा प्रान्त में भी उसके मन्त्रिमण्डल बन गये। यह साबित हो गया कि मुस्लिम क्षेत्र में भी, सब जगह, मुस्लिम लीग मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करती।

इधर कांग्रेस को शासन का भी कुछ अनुभव प्राप्त हो गया। राज कर्मचारी अब कांग्रेसी मंत्रियों को सलाम करने लगे। देश में एक नये वातावरण की सृष्टि हुई।

इसी बीच, देश में एक और मुस्लिम लीग के नेतृत्व में साम्प्रदायवाद खूब बढ़ा। राष्ट्रीय नेताओं ने लीगी नेता जिन्ना से बार बार समझौता करना चाहा। लेकिन, असफलता ही मिलती गई।

फलतः, हिन्दू सम्प्रदायवाद भी बहुत बढ़ गया। अब मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का नारा लगाया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने इस नारे का विरोध किया। जानबूझ कर जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे कराने की कोशिश की गई। इनमें अंग्रेज सरकार का अप्रत्यक्ष-सहयोग रहा आया।

**अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र**—कांग्रेस ने उन राष्ट्रों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की जो अपनी आजादी के लिये लड़ रहे थे। सैनिक तानाशाह फ्राँको ने स्पेन की जनतन्त्रवादी सरकार के विरुद्ध बिद्रोह किया। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन ने जनतन्त्रवादी स्पेन का समर्थन किया। उसी प्रकार इटली के फाशिस्त तानाशाह मुसोलिनी ने अफ्रीका के एक छोटे देश अबीसीनिया पर हमला किया, उसी तरह जापान ने चीन पर हमला करके उससे मंचूरिया छीन लिया। अब जापान ने आगे चलकर खास चीन के दूसरे हिस्से भी कब्जे में कर लिये। कांग्रेस तथा पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन की सहानुभूति चीन के साथ रही।

**दूसरा विश्व युद्ध**—नात्सी तानाशाह हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी ने इटली और जापान के साथ एक होकर, यूरोप में जबर्दस्त लड़ाई छेड़ दी।

फ्रान्स तथा अन्य राष्ट्र उसके कब्जे में चले गये ब्रिटेन पर भी हमलः किया। बाद में रूस पर भी वह चढ़ दौड़ा। इस प्रकार एक ओर ब्रिटेन अमेरिका और रूस का एक पक्ष तथा दूसरी ओर जर्मनी, जापान और इटली का दूसरा पक्ष—इन दो के बीच भयानक युद्ध शुरू हुआ। (यह घटना सन १९३९-४२ की है)

लड़ाई छिड़ती देखकर अंग्रेजों ने गवर्नर जनरल को अधिक अधिकार दे दिये। रही सही ताकत भी जब अंग्रेजों के हाथ में आ गई तो कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल छोड़ दिये। उधर ब्रिटिश सरकार के एक प्रतिनिधि सर स्टैफर्ड क्रिप्स, अंग्रेजों की तरफ से एक नई योजना लेकर आये, जो यदि स्वीकृत की जाती तो हिन्दुस्तान के दो नहीं अनेक टुकड़े हो जाते। कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया।

**भारत छोड़ो आन्दोलन**—शीघ्र ही 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ। अंग्रेजों ने कांग्रेस को गैर कानूनी करार दिया। सब नेताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। साम्प्रदायिक उत्तेजना का वातावरण बनाया गया। सिन्ध और सीमा प्रान्त में हिन्दू मुस्लिम दंगे कराये गये। इधर जनता एक होकर भारत छोड़ो आन्दोलन चलाती जा रही थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की उग्रता बढ़ती ही जा रही थी। अंग्रेजों ने आन्दोलनकारियों को बहुत ही पशुता पूर्वक कुचला। आष्टी और चिमूर नामक गाँवों में उन्होंने अत्याचार की पराकाष्ठा कर दी।

**बंगाल का अकाल**—इसी बीच बंगाल में अकाल पड़ा। युद्ध के कारण भाव मँहगे हो गये थे। फसल खूब अच्छी हुई थी। किन्तु कीमतें इतनी बढ़ गई थीं कि गरीब किसानों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नहीं रहा। शहरों और गाँवों के गरीब मरने लगे। गरीब औरतें अपने बच्चे बेचने लगीं। लाखों लोग भूख से मर गये। भारतीय जनता ने देश भर में चन्दा करके उसे बंगाल पहुँचाया। अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण अब और प्रचुब्ध हो उठा।

महात्मा गांधी के अननन्य सहचर महादेव देसाई व गांधी जी की धर्मपत्नी सौ० कस्तूरबा जेल में ही मर गए।

उधर जर्मनी रूस के भीतर तक घुस आया था। धीरे-धीरे रूसी सँभले और उन्होंने जर्मनी को पीछे ढकेलना शुरू किया। क्रमशः रूसी बलिष्ठ तक आने लगे। इधर पश्चिमी देशों की सेनाएँ फ्रांस में उतरीं और अन्त में धीरे-धीरे हिटलर और जर्मनी का खात्मा हो गया। इटली भी हार गया। जापान के दो नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीका ने ऐटम बम डाला। जापान ने घुटने टेक दिये।

अब दुनिया में दो देश सर्वाधिक बलिष्ठ दिखाई दिये रूस और अमरीका। इधर भारत में अंग्रेजों के खिलाफ वातावरण बनता रहा। सुभाषचन्द्र बोस ने भारत के बाहर जाकर अपनी एक सेना बनाई थी जिसे इण्डियन नेशनल आर्मी कहते थे। युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों को पकड़ लिया गया और उन पर मुकदमें चलाये गये जिसका परिणाम यह हुआ कि देश भर में जोश छा गया। उधर बम्बई के पास की जहाजी सेनाओं के भारतीय अफसरों ने विद्रोह कर दिया। उधर उत्तर प्रदेश तथा बिहार की पुलिस ने हड़ताल कर दी।

जब फौज और पुलिस में भी विद्रोह पूर्ण भावनाएँ फैलने लगीं और भारत के उत्तर सीमा पर रूस प्रबल हो उठा तब अंग्रेजों ने स्वाधीनता प्रदान की। स्वाधीनता प्रदान करने के पहले उन्होंने देश के दो टुकड़े कर दिये। कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जिनमें महात्मा गाँधी और मौलाना अबुलकलाम आजाद थे, भारत विभाजन का विरोध किया। किन्तु देश स्वतंत्रता के लिए लालायित था इसलिए, पूरी परिस्थिति देखकर, भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार १५ अगस्त १९४७ के दिन भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई।

भारत से अंग्रेजी राज समाप्त हो गया। प्रथम केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में पंडित जवाहर लाल नेहरू प्रधान मंत्री बने।

पाकिस्तान बनने के कारण देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए। उधर पाकिस्तान में भी भयानक दंगे हुए। वहाँ से लाखों हिन्दू भारत की तरफ भागे और यहाँ से लाखों मुसलमान पाकिस्तान चले गये। इस भगदड़ में असीम हानि हुई, बच्चे खो गये, औरतें लापता हो गईं। सम्पत्ति का नाश हुआ।

प्रथम मन्त्रिमण्डल को सबसे पहले शरणार्थियों की समस्या तथा देश में शान्ति और सुव्यवस्था की समस्या का सामना करना पड़ा ।

उधर सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में देशी राज्यों को भारत में विलीन कर लिया गया ।

किन्तु पाकिस्तान कश्मीर को हथियाना चाहता था, इसलिए उसने कश्मीर के एक हिस्से को अपने कब्जे में कर लिया । कश्मीर की बहुसंख्यक जनता मुस्लिम होते हुए भी राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के साथ रही आयी । वहाँ कभी भी मुस्लिम सम्प्रदायवाद का प्रभाव नहीं था ।

इधर उत्तेजित होकर एक हिन्दू सम्प्रदायवादी ने प्रार्थना सभा में जाते हुए महात्मा गाँधी को अपनी गोली का शिकार बनाया । परिणाम स्वरूप, देश भर में शोक छा गया, दुःख को काली छाया विस्तीर्ण हो उठी ।

यह घटना ३० जनवरी १९४८ की है !

जनवरी सन् १९५० में भारत में नया संविधान लागू हुआ । भारत एक सार्वभौम गणतंत्र राज्य बन गया । भारत के इतिहास में एक महान् परिवर्तन हो गया ।

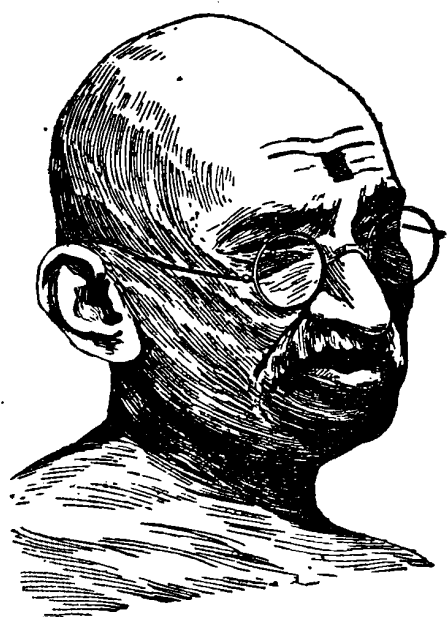
### प्रश्न

१. महात्मा गाँधी के कार्य सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये ।
२. इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति अंग्रेजों की क्या नीति रही ।
३. दूसरी गोलमेज परिषद् क्यों बुलाई गई ?
४. राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्ति के पहले की देश स्थिति के बारे में आप क्या जानते हैं ।
५. इस समय के प्रधान नेताओं के बारे में अपनी जानकारी लिखिए ।
६. इस काल की प्रधान घटनाओं पर प्रकाश डालिये ।

## राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी । १६

[ महात्मा गाँधी ने देश की स्वाधीनता, विश्व को शान्ति और मैत्री तथा अन्याय के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध और मानव-हृदय को नैतिक बल प्रदान किया । उन्होंने देश और विश्व के बड़े-बड़े मनीषियों के विचारों को अपने में रंग दिया, भारतीय जनता को नये आध्यात्मिक संस्कार प्रदान किये । देश की महत्तम विभूतियों में महात्मा गाँधी का नाम है । ]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी—हजारों वर्षों में एकाध बार जो आदमी नजर आते हैं, उनमें महात्मा गाँधी का नाम आता है । क्यों ? इसलिए कि



उन्होंने राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए विशुद्ध नैतिक अस्त्रों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया । “अहिंसा तथा सत्याग्रह” उनके ये दो प्रधान सिद्धान्त हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उन्होंने भारतीय स्वाधीनता स्थापित की । ब्रिटिश साम्राज्य में एक जमाने में सूरज कहीं नहीं डूबा करता था । आज भी सूरज उगता है, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य चुक गया है । इस प्रचण्ड ब्रिटिश साम्राज्य को, जो सन् सैंतालीस के पहले, दुनिया के हिस्से में था, महात्मा

गाँधी ने ऐसी करारी चोट दी कि वह हिल गया ।

महात्मा गाँधी ने अपने इस कार्य द्वारा विश्व-इतिहास में एक महान् घटना उपस्थित कर दी । आज अमरीका और अफ्रीका का नीग्रो तथा अन्य

पराधीन जातियाँ गाँधी जी के नैतिक अस्त्रों का प्रयोग करती हैं। महात्मा गाँधी क, अहिंसा तथा सत्याग्रह के सिद्धान्त इतने सफल क्यों हुए ?

महात्मा गाँधी न केवल अपने नैतिक सिद्धान्तों में विश्वास करते थे, जनता की आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति में उनकी निष्ठा थी। उन्हें मालूम था कि जनता त्याग और बलिदान के उच्च आदर्शों का निर्वाह करते हुए एक न एक दिन भारत को स्वाधीन करेगी ही। इसलिए उन्होंने निष्ठापूर्वक अपने को जनता का बना लिया। वे उसके अपने हो गये। वे भोपड़ियों में रहते, नंगे पैर चलते, एक धोती भर पहनते। जिस तरह भारत का दरिद्र नारायण रहता है, उसी प्रकार उन्होंने अपने को ढाल लिया।

हाँ, ढाल लिया ? मोहन दास करम चन्द्र गाँधी के पितृ भी राजकोट रियासत के दीवान थे। उनके यहाँ सब कुछ था, धन, दौलत, पैसा इज्जत और ताकत। गाँधी जी ने सब को ठुकरा दिया। अपने आदतों को सुधारा अपने आप कर काबू किया स्वयं को वशीभूत कर लिया। वे हृदय की शुद्धि के लिए अनशन करते। उपवास करते !

क्यों करते ? इसलिए कि जब मन सुखेच्छाओं के वशीभूत रहता है तो कर्तव्य-कार्य करने के कठोर मार्ग पर नहीं चल सकता इसलिए, मन को वश में रखना आवश्यक है। उसको मजबूत बनाने के लिए यह जरूरी है कि वह अपने सुख या दुःख को न देखकर, दूसरों के दुःख को देखे।

वैष्णव जन तो तेरी कहिए,

जे पीर पराई जागे रे !

इस पराई पीर के पीछे, उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया। इसीलिए वे महात्मा थे। उनकी भोपड़ी में हिंदू मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी धर्मों के भजन और गीत, स्तोत्र और आयतें गूँजती रहती थीं। सन् १९२८ में महात्मा गाँधी ने कहा था—“मैं इन निर्णयों पर आया हूँ (१) सब धर्म सत्य हैं, (२) सब धर्मों में कोई न कोई गलती है (३) जैसा मुझे मेरा हिन्दू धर्म प्यारा है, वैसे ही मुझे सब धर्म प्यारे हैं !



जिस समय महात्मा गाँधी राजनीति में अवतारण हुए उन दिनों देश की दशा क्या थी ? जनता कष्ट में डूबी हुई थी, लेकिन सिर ऊँचा नहीं कर सकती थी। शिक्षित मध्य वर्ग को मालूम नहीं था कि वह किधर जाये—प्राचीन की ओर जाने में उनकी आँखों से सामाजिक जीवन-लक्ष्य लुप्त हो जाता है। जो कुछ नवीन था, वह पश्चिम से मिला था, उसकी उस पर अटूट श्रद्धा न थी। सर्वोच्च रईस-जमींदार वर्ग अंग्रेजों के आंचल में दुबक गया था। उद्योग पति वर्ग अंग्रेजों से नाराज था, लेकिन कर कुछ नहीं सकता था, क्योंकि उसके प्रति-दिन के स्वार्थ अंग्रेजों से लगे हुए थे। देश में विफलता और उदासीनता का साम्राज्य था।

उस समय राजनीति दो ढंग की थी। या तो कांग्रेस अधिवेशनों में प्रस्ताव पास करते रहिए और देश में भाषण देते जाइये, या आतंकवादी विस्फोट करते रहिए। दोनों प्रकार की राजनीति में, सामान्य जनता को कहीं भी क्षेत्र नहीं मिलता था।

यद्यपि कांग्रेस जनतन्त्रात्मक संस्था थी, फिर भी वोट देने का अधिकार सीमित था और वह उच्चतर वर्गों के ही हाथ में था। महात्मा गाँधी ने सब से पहले कांग्रेस के विधान में संशोधन कर, उसे पूरी जनता के लिए, किसानों और मजदूरों के लिए खुला कर दिया। उसमें किसान ही किसान आये, जिसमें मध्य वर्ग के लोग भी छिटके हुए दिखाई देते थे। कांग्रेस पर किसानों का प्रभाव बढ़ता चला गया। मजदूर भी आये, किन्तु कम !

अब काम का नम्बर आया। आतंकवादी रास्तों का विरोध किया गया, पुराने शिकायती तरीके और उग्र भाषण छोड़कर, काम की एक नई पद्धति अंगीकार की गई। अंग्रेजों के प्रतिरोध के लिए, निर्भयता और सत्य-निष्ठा की बुनियाद पर, असहकार और सत्याग्रह का सिद्धान्त रखा गया।

कार्य क्रम दो प्रकार के थे ( १ ) शान्तिपूर्ण ढंग से अहिंसात्मक पद्धति से, अंग्रेजों का विदेशी आधिपत्य का प्रतिरोध, ( २ ) समाज-सुधार तथा रचनात्मक कार्य—जैसे अस्पृश्यता का नाश, अल्पमत की समस्याओं का समाधान; और चर्खा चलाना तथा ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना इत्यादि।

उन दिनों, सामान्य जनता पर अंग्रेजों की धाक थी, दबदबा था ! विदेशी शासकों के कृपापात्र रहने वालों का भी समाज पर खूब प्रभाव था ! यह आवश्यक था कि जनता पर छाये हुए विदेशी धाक और दबदबे का उसकी प्रतिष्ठा और साख का लोप हो, जनता के दिल खुले उसमें साहस उत्पन्न हो, वे निर्भय और सत्यपरायण बनें । अंग्रेज सरकार की इस बुनियाद को खिसका देने के लिए ही महात्मा गाँधी ने सबसे पहले विदेशी शासकों द्वारा दी गई उपाधियों के त्याग का अनुरोध किया । लोग सर और राय बहादुर, खान बहादुर और राय साहब की उपाधियाँ एक के बाद एक छोड़ते चले गये । परिणाम यह हुआ कि जनता को यह प्रतीत हुआ कि ये उपाधियाँ नैतिक अपभ्रंश की, मानसिक दासता की सूचक हैं । ये उपाधियाँ भ्रष्टाचार का लक्षण हैं, निर्लज्जता की निशानी हैं । जनता पर से अंग्रेजों की धाक उड़ गई, उनकी प्रतिष्ठा जाती रही । लोग निर्भय होने लगे । जनता के अनुकूल, एक नया वातावरण सामने आया । महात्मा-गाँधी के जीवन का अनुकरण करते हुए, खाते-पीते लोग सादगी से रहने लगे—यहाँ धनी सम्पन्न वर्ग के लोगों ने भी सादगी से रहना शुरू किया और इस प्रकार से सामान्य जनता के सम्मान दिखाई देने लगे । गाँधी जी ने जीवन के आदर्श सामने रखे; पुराने मिट गये ।

अब तक राजनीतिज्ञ शहरों में लम्बे-चौड़े भाषण देता था । किन्तु, अब महात्मा गाँधी ने बड़े-बड़े नेताओं को सादगी सिखाकर उन्हें गाँवों में भेजना शुरू किया, जिससे कि वे राष्ट्रीय मुक्ति का संदेश गाँव वालों को दे सकें । इस प्रकार गरीब जनता का प्रभाव कांग्रेस पर बढ़ता गया और उसके उत्थान को लक्ष्य में रखा गया । गाँवों और कस्बों में नया जीवन लहराने लगा ।

भारत के सम्बन्ध में गाँधी जी की कल्पना क्या थी !! “मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें गरीब से गरीब यह महसूस करेगा कि यह उसका देश है और जिसके निर्माण में उसका भी प्रभावशाली हाथ है ऐसा भारत

जिसमें न उच्च वर्ग है, न निम्न वर्ग, जिसमें अस्पृश्यता का अभिशाप अथवा उत्तेजक मद्यों या बूटियों के अभिशाप को कोई स्थान नहीं है, जहाँ स्त्रियों को वही अधिकार है जो पुरुषों को, यह मेरे स्वप्नों का भारत है।”

ऐसी स्थिति में, महात्मा गाँधी भारतीय जनता को एक चुम्बक की भाँति अपने पास खींच लेते, उन्हें मंत्र मुग्ध कर देते। वे व्यक्ति को समाज से, प्राचीन को भविष्य से जोड़ रहे थे। वे जनता को स्वावलम्बन, आत्म-निर्भरता, प्रेम सद्भावना, मानव एकता तथा सादगी सिखाते थे।

हाँ, धनी और अंग्रेजी तरीके से जिन्दगी बिताने वाले लोगों को गाँधी जी का रास्ता कठिन मालूम हुआ, लेकिन गरीब जनता को बहुत आसान लगा। महात्मा गाँधी ने जनता के साथ अपने को एकाकार कर लिया। जनता का उत्थान उनका प्रथम लक्ष्य हो गया, धर्म उससे गौण रहा।

महात्मा गाँधी ने कहा “आधी भूखी जनता कोई धर्म नहीं रख सकती न कोई कला, न कोई संगठन। मेरे लेखे करोड़ों भूखे लोगों को जो उपयोगी दिखाई दे वह सुन्दर है; और तब जीवन का सारा सौन्दर्य और अलंकरण आप ही आप अनुगत होगा। मैं ऐसी कला और साहित्य चाहता हूँ जो करोड़ों जनता से बोल सके!”

पहली बार, भारत के इतिहास में करोड़ों भूखे जनों को महत्त्व देने वाला इनका सगा बनने वाला एक व्यक्ति सम्मुख आया, जिसने उसी गरीब दबी-कुचली जनता को नैतिक साहस प्रदान करके क्या का क्या बना दिया! उस नैतिकतापूर्ण जन-शक्ति के आघात से, ब्रिटिश साम्राज्य चूर-चूर हो गया। नये भारत के उस प्रणेता की मृत्यु भी उसी शहीदानी तरीके से हुई। विस्तर पर मरने या चलते हुए हार्टफेल होने के बजाय, वह महान् आत्मा हमारा राष्ट्रपिता राम नाम का पाठ करते हुए एक तुच्छ हिन्दू सम्प्रदायवादी की गोली का शिकार हुआ!

भारत ही नहीं, विश्व भर ने उसकी मृत्यु का शोक मनाया! भारत में तीस जनवरी उन्नीस सौ अड़तालीस काली छायाओं में डूब गया था।

**प्रश्न**

१. महात्मा गांधी के कार्य-नीति पर प्रकाश डालिये ।
२. अहिंसा तथा सत्याग्रह के सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए ।
३. राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधी जी की देन पर एक लेख लिखिए ।
४. भारतीय संस्कृति में गांधी जी के योगदान की चर्चा कीजिए ।
५. विश्व पर गांधी जी के प्रभाव के संबंध में आप क्या जानते हैं ।
६. भारतीय दरिद्र जनता के उत्थान के लिए गांधी जी ने क्या किया ।
७. साहित्य तथा कला के संबंध में गांधी जी के क्या विचार थे ।
८. धर्म के संबंध में गांधी जी के विचारों को स्पष्ट कीजिए ।

## महानों का मन्वन्तर । १७

[ भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय अभ्युत्थान में अनेकों महान् आत्माओं ने योगदान दिया । उनमें से कुछ पश्चिम की तरफ भुके, कुछ पूर्व की ओर किन्तु सबने राष्ट्रीय चेतना के विकास स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया । उनमें से कुछ के नाम अविस्मरणीय रहेंगे । उन्नीसवीं सदी के मध्य से बीसवीं सदी के मध्य तक ये महान् पुरुष हमारे सामने आये । इस लिए हम पिछले सौ सालों को महानों का मन्वन्तर भी कह सकते हैं । ]

उन दिनों सुशिक्षित जनता में दुमँही प्रवृत्ति थी । एक वह थे जो पश्चिम के ज्ञान को आत्मसात् कर भारत को रूढ़ि की दासता से मुक्त करना चाहते थे, एक वे थे जो हमें प्राचीन संस्कृति का भान करा रहे थे । इन दोनों के बीच संघर्ष होना भी स्वाभाविक था ।

दयानन्द सरस्वती — उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जित उद्भट समाज सुधारकों का जन्म हुआ उनमें दयानन्द सरस्वती प्रधान हैं—ऐतिहासिक दृष्टि से । आज के रूढ़िग्रस्त धर्म का विरोध करने के लिए उन्होंने पश्चिम की ओर नहीं देखा वरन् प्राचीन वैदिक आर्य धर्म से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की । उसका पुनरुज्जीवन करने का उन्होंने प्रयत्न किया । वे स्वतंत्र विचारवादी विद्वान चिन्तक थे । उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक अंधविश्वासों पर कुशाराघात किया; किन्तु प्राचीन वैदिक विश्वासों और प्रणालियों का उन्होंने स्पष्टीकरण भी किया । उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू बनाने का मार्ग खोल दिया । उन्हें 'शुद्ध' किया जाने लगा । फलतः आर्य समाज की टक्कर उन धर्मों से हुई.

जो स्वयं ही अपने में दूसरों को दीक्षित करते थे। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में पंजाब और उत्तर प्रदेश में आर्य समाज का बड़ा स्थान था, जो अभी भी है।

**विवेकानन्द** —स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अपने आप में एक मनोहर और उदात्त दर्शन था। मुख मण्डल पर अपूर्व तेज, सहज आत्म-विश्वास, अपने मन और कार्य के औचित्य की स्वाभाविक भावना प्रकृति-जात आत्म-सन्तुलन और कोमल आवेश-मय दृष्टि सब ओर प्रेरणा के विद्युत्करण विखेरती थी। उन्होंने विश्व को भारत का आध्यात्मिक सन्देश प्रदान किया—ऐसा आध्यात्मिक संदेश जिसमें कोई अन्धविश्वास पूर्ण रहस्यवाद नहीं था, या तर्क-वितर्क पूर्ण वितण्डा नहीं था—वरन् प्रखर विश्लेषण से युक्त समग्र बोध था। वैज्ञानिक बुद्धि के द्वारा दार्शनिक तत्व-निरूपण करते हुये भी उनके वेदान्त में सृजनशील निष्ठा का आवेश था।



स्वामी विवेकानन्द जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्र की दीवारें तोड़कर उसके परे सर्व जन हिताय मात्र मानव सेवा के लिए विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। आज यह मिशन भारत, पाकिस्तान, अमरीका, फिजी और दक्षिण अफ्रीका में निःस्वार्थ मानव-सेवा कर रहा है; और इस प्रकार, वह मानव-कल्याण का साक्षात् और ज्वलन्त उदाहरण सामने रखे हुये है।

विवेकानन्द स्वयं प्रभावशाली वक्ता और लेखक थे। सन् १८९३ में उन्होंने अफ्रीका के शिकागो नगर में सर्व-धर्म सम्मेलन (पार्लामेंट आफ रिलीजन्स) में भाग लिया। वहाँ वे एकाध साल रहे। उनके बाद यूरोप का दौरा करते हुए वे इजिप्त और चीन गये। यूरोप के धर्मों से वे प्रभावित नहीं हुए

थे । विश्व यात्रा से लौटकर भारतीय दर्शन में उनकी निष्ठा पहले से भी ज्यादा हो गई ।

वे कहते थे कि मानव में ईश्वरीय आत्मा देखना ही धर्म है । मानव अन्तः-करण स्वयं ईश्वरीय गुणों का समुदाय है । केवल इन गुणों के सक्रिय होने की देर है । विवेकानन्द का दर्शन उदात्त मानव दर्शन था ।

यद्यपि उन्होंने राजनीति में भाग नहीं लिया किन्तु उनके सामाजिक और राजनैतिक विचार सुस्पष्ट थे । वे बार-बार स्वाधीनता, समानता, जनता के उत्थान के कार्य पर जोर देते थे । वे कहते—“कार्य और विचारों की स्वाधीनता जीवन विकास तथा कल्याण की मूल भूमि है । जहाँ उसका अस्तित्व नहीं है, वहाँ मनुष्य, मानव जाति और राष्ट्र नष्ट होने वाले हैं ।”

विवेकानन्द ने कहा “भारत की आशा का केन्द्र केवल जनता है; उच्चतर वर्ग मानसिक और नैतिक धरातल पर मृतवत् हो गये हैं ।” उन्होंने कहा—“मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि वह व्यवस्था सर्व गुण सम्पन्न है, वरन् इसलिए कि जहाँ रोटी ही नहीं है, वहाँ आधी रोटी अच्छी है । अन्य व्यवस्थाओं का प्रयोग किया जा चुका, और उनमें खामियाँ पाई गई । अब इसका प्रयोग किया जाय—अगर किसी बात के लिए नहीं तो केवल उसकी नवीनता ही के लिए क्यों न सही ।”

विवेकानन्द क्रमशः अन्तर्राष्ट्रीय वादी होते गये । उन्होंने एक जगह कहा—“भारत के पतन का मूल कारण है अपने घरौंदे में जाकर बैठ जाना और अन्य राष्ट्रों से सम्पर्क तोड़ देना । फलतः भारतीय सभ्यता मसाले से भरी शव-मूर्ति जैसी जड़ी भूत हो गई !” उन्होंने एक जगह कहा—“समाजशास्त्र और राजनीति में भी बीस साल पहले जो समस्याएँ केवल राष्ट्रीय थीं वे आज केवल राष्ट्रीय आधार पर हल नहीं की जा सकतीं । आज उन्होंने बृहद् आकार और विशाल रूप धारण कर लिया है । वे अभी हल की जा सकती हैं जब उन्हें व्यापक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर देखा जाये ।”

भारतीय जनों को सम्बोधित करते हुये वे बार-बार कहते 'निर्भय बनो, शक्तिमान बनो ।'

“सत्य की कसौटी है जो चीज तुम्हारे शरीर को, बुद्धि को, आत्मा को कमजोर बनाती है उसे जहर के समान निकाल कर फेंक दो, क्योंकि उसमें कोई प्राण नहीं है । इस दर्शन को स्वीकारो । श्रेष्ठतम सत्य दुनिया की सबसे सीधी बातें हैं । इतना सीधा और आसान जितना कि तुम्हारा होना ।” उन्होंने अन्ध विश्वासों से जनता को आगाह किया “मैं तुम्हें अन्धविश्वासी मूर्खों की अपेक्षा घनघोर नास्तिक देखना प्रसन्न करूँगा, क्योंकि नास्तिक जीवन पूर्ण होता है और उससे आप कुछ कर सकते हैं । किन्तु, यदि अन्धविश्वास आ जाय, तो दिमाग चला है, दिमाग नरम पड़ने लगता है, और अधःपतन जिन्दगी पर हावी हो जाता है ।”

इस्लाम के सम्बन्ध में उनके क्या ख्याल थे । वेदान्त उनके लिए सर्वोपरि था । किन्तु उस वेदान्त का व्यवहारिक रूप वे इस्लाम में देखते थे, भले ही इस्लाम वेदान्त से अपरिचित रहे । पण्डित नेहरू ने अपनी ‘डिस्कवरी आफ इण्डिया’ में विवेकानन्द के बचन दिये हैं । क्यों ? इसलिए कि इस्लाम में मानव समानता का व्यावहारिक रूप था । उन्होंने कहा—“दूसरी ओर हमारा अनुभव है कि यदि किसी भी धर्म के अनुयायी अपने दैनिक जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में इस समानता के पास पहुँचते हैं—वे ऐसे व्यवहार के गहरे अर्थ और सन्निहित सिद्धान्त जिन्हें भलीभाँति देखते हैं स्वयं भले ही न समझें तो वह धर्म इस्लाम और केवल इस्लाम है हमारे मातृत्व के लिए ही दो महान् व्यवस्था का संयोग—हिन्दू धर्म और इस्लाम, वेदान्त मस्तिष्क और इस्लाम शरीर ही आशा केन्द्र है !!” विवेकानन्द कहते हैं ‘मैं अपने मन की आँखों के सामने भविष्य के उस सर्वगुणान्वित पूर्ण भारत को, उस कीर्तिमान अपरिच्येय भारत को देखता हूँ जिसका देह इस्लाम है और मस्तिष्क वेदान्त है !!’ वे कहते थे “हमारा विश्वास है कि वेदान्त भविष्य की ज्ञानपूर्ण मानवता का धर्म है ।”



विवेकानन्द ने भारत के दक्षिण कोण कुमारी अन्तरोप से भाषण देते हुए, गरजते हुए उत्तर में हिमालय तक की यात्रा की। उन्होंने अपने को इतना क्षीण कर लिया कि वह भव्य देह और दिव्य आत्मा केवल उन्तालिस साल की अवस्था में ही स्वर्ग सिधार गई। यह घटना सन् १९०२ की है।

**रवीन्द्रनाथ ठाकुर**—रवीन्द्रनाथ बंगाल की महान् परम्परा के चरम उत्कर्ष के रूप में सामने आते हैं। यह परम्परा एक ओर राजाराममोहन राय, केशव चन्दर सेन से होती हुई तो दूसरी ओर रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द से प्रवाहित होती हुई और इन सब को समेटती हुई रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व और साहित्य में कूद पड़ी। इस परम्परा में जो रवीन्द्र के रूप में सामने आई, एक ओर अथाह मानव प्रेम तथा तल्लीन सौन्दर्य भावना थी; उसमें झलकते हुए ईश्वर-प्रेम की ज्योति मानव-प्रेम में रंगीन हो उठी उसी परम्परा में दूसरी ओर मानव-उत्थान में गहन अनुराग और मानव समानता और मानव एकता के आधार पर विश्वमैत्री का बोध झलक उठता था। उनके व्यक्तित्व और साहित्य में पूर्व और पश्चिम का विलक्षण समन्वय था। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और साहित्य द्वारा न केवल विभिन्न प्रान्तों के साहित्यिकों को वरन् यूरोप के साहित्यिकों को भी प्रभावित किया। आयरलैंड के विश्वविख्यात कवि डब्ल्यू० बी० यीट्स ने उनकी गीतांजलि का अंग्रेजी में अनुवाद किया। फ्रांस के महामनीषी उपन्यासकार रोम्यारोलांग ने उन पर पुस्तक लिखी।

उन्होंने बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों के स्वदेशी आन्दोलन में भाग भी लिया। उन्होंने मानव व्यक्तित्व की सर्वाङ्गीण उन्नति से प्रेरित होकर, शान्ति-निकेतन और श्री निकेतन नामक दो संस्थाएँ स्थापित कीं। श्री-निकेतन में कला कारीगरी तथा शान्ति निकेतन में विभिन्न भाषाएँ साहित्य, दर्शन, चित्रकला, संगीत नृत्य आदि की पढ़ाई होती थी। उन्होंने रवीन्द्र संगीत ( एक नई पद्धति ) चलाई। तथा चित्रकला में भी मौलिक कार्य किया। शान्ति निकेतन में न केवल भारतीय विद्वान और कलाकार रहते थे, वरन् विभिन्न राष्ट्रों के विद्वान वहाँ आकर पढ़ाने में गौरव समझते थे।

समय-समय पर रवीन्द्र स्वयं भारतीय संकटों के काल में प्रेरित होकर, कदम बढ़ाते थे। उन्होंने अपनी 'सर' नामक उपाधि अंग्रेजों को लौटा दी। उसी प्रकार देशवासियों को तरह-तरह के खतरों से वे आगाह करते रहे। रवीन्द्रनाथ ने रूस-यात्रा की। मानव समानता की भावना, शिक्षा का स्तर आदि देखकर वे रूस से बहुत प्रभावित हुए। अपनी रूस यात्रा पर उन्होंने रूसेर चिट्ठी नामक एक पुस्तक भी लिखी। उन्होंने किसानों और मजदूरों के सम्बन्ध में कविताएँ भी लिखीं।

अब तक यह देखा गया है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता जाता है वह कट्टर रूढ़िवादी और संकुचित विचार-धारा वाला होता जाता है। इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की उमर ज्यों-ज्यों बढ़ती गई उनके विचार अधिकाधिक रूढ़ि विरोधी मानव समानता मूलक, उदार और प्रखर होते चले गये। वे दलित पीड़ित जनता के महान् समर्थक और अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री के उपासक थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के आधार को व्यापक कर दिया। इस महान् मानवतावादी कलाकार की स्मृति में, यदि आज उस कवि का बनाया—'जन-गण-मन, हमारा राष्ट्र-गान हो जाये तो यह स्वाभाविक ही है।

**सैयद अहमदखान**—गदर के बाद, अंग्रेजों ने मुसलमानों को बहुत दबाया। उनमें जबर्दस्त अंग्रेज विरोधी भावनाएँ फैली हुई थीं। साथ ही साथ, भयानक रूढ़िवाद था। रूढ़िवादी प्रवृत्ति के कारण, वे अंग्रेजों तालीम भी नहीं लेते थे। जब सर सैयद खान मैदान में आये तो उनके दो काम थे। एक मुसलमानों को अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ हटाना; दो मुसलमानों को पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत जाना। उन्हें विश्वास था कि जब तक अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ मुसलमानों के दिल से नहीं हटायी जातीं तब तक पश्चिमी शिक्षा का प्रचार उनमें नहीं हो सकता।

आवश्यकता इस बात की थी कि हिन्दुओं की भाँति ही पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर मुस्लिम मध्य वर्ग उत्पन्न हो। इसके लिए, सर सैयद अहमद ने अली-गढ़ में मोहमडन ओरियेंटल कालेज खोला। उसमें पुराने मुस्लिम विद्वानों

के साथ ही, अंग्रेज प्रोफेसर भी पढ़ाते। उसे आगे चलकर विश्वविद्यालय का रूप दिया गया।

उन्होंने खुद लिखा है कि धर्म कोई राजनैतिक या राष्ट्रीय महत्व नहीं रखता। उन्होंने कहा, “क्या तुम एक ही देश में नहीं रहते। याद रखो कि हिन्दू और मुस्लिम ये दो शब्द अपना-अपना धर्म बताने के लिए हैं। वैसे, सब लोग चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान, या वे ईसाई जो भारत में रहते हैं वे सब इस विशेष दृष्टि से एक ही राष्ट्र के अंग हैं।”

मौलाना अबुलकलाम आजाद—ये नौजवानी में ही इस्लाम के धर्म दर्शन, साहित्य तथा अन्य विद्याओं में पारंगत हो गये। मिस्र, बगदाद, कुसतुन-तुनिया के विद्वानों से उनका गहरा सम्पर्क था। वे अनेक राष्ट्रों के उत्थान और पतन का इतिहास जानते थे। वे धर्म-सूत्रों की गहन और मौलिक व्याख्या करते थे। इस्लाम के धर्म को वे समझते थे। उनमें प्राचीन इस्लामिक परम्परा बुद्धि-वादी भाव और आधुनिक ज्ञान दृष्टि थी। वे उत्तम लेखक थे। उनकी भाषा शैली अपनी थी। उन्होंने अपने विचारों से और भाषा से मुस्लिम जगत् में सन-सनी पैदा कर दी। इधर मौलाना अबुलकलाम आजाद ने उर्दू में ‘अवदिलाल’ साप्ताहिक पत्र निकाला। उन दिनों उनकी उमर सिर्फ २४ साल की थी। उन्होंने अपने पत्र द्वारा नये भावों और विचारों का प्रसार-प्रचार आरम्भ किया। फलतः मुस्लिम लीग भी कांग्रेस के समीप आती चली गई। उधर, उन्हें ‘दि कांमरेड’ (अंग्रेजी) पत्र के सम्पादक के रूप में मौलाना मुहम्मद अली जैसा नेता मिला। मौलाना मुहम्मद अली एक साथ प्राचीन इस्लाम की परम्परा और ब्रिटेन के आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की परम्परा आत्मसात् किये हुए थे। शुरू में, वे अलीगढ़ परम्परा के साथ में रहे, किन्तु ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये उन्होंने अधिकाधिक ब्रिटिश विरोध नीति अपनाई। उन्हें तथा उनके भाई शौकत अली को जेल में डाल दिया गया।

मुहम्मद अली ने महात्मा गाँधी के साथ एकता स्थापित करके खिलाफत आन्दोलन चलाया, जिसका उद्देश्य तुर्की के साथ अंग्रेजों के कार्यव्यवहार का

विरोध करना था और भारत के हिन्दुओं मुसलमानों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करना था। महात्मा गाँधी मुहम्मद अली के साथ देश भर में घूमे, और उस समय उन्होंने अपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रचार किया।

मुहम्मद अली ने युवक मुसलमान की विद्रोही मनोवृत्तियों को देखकर आन्दोलन चलाया था। मुहम्मद अली, शौकत अली ने कांग्रेस की राष्ट्रीय राजनीति में हिस्सा लिया। किन्तु दुर्भाग्य से सन् १८३० में मुहम्मद अली की मृत्यु हो गई।

उधर, अब्दुलकलाम आजाद, युवक होते हुए भी, ज्यों ही कांग्रेस में प्रविष्ट हुए, उसके केन्द्रीय नेतृत्व में प्रवेश कर गये। यहाँ तक कि उनकी सलाह को उसी प्रकार सुना जाने लगा जिस प्रकार किसी बुजुर्ग से ( यद्यपि वे तरुण थे ) सुनी जाती है !! इसका कारण उनका वह व्यक्तित्व था, जो अपने गंभीर अध्यात्म, समान दृष्टि और राष्ट्रीय तेजस्विता का प्रतीक था। मुख्यतः राष्ट्रीय संकटों के और उथल-पुथल के काल में ही, वे कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष (उन दिनों 'राष्ट्रपति') बने ! कांग्रेस तथा देश का सन् बयालीस का भारत छोड़ो आन्दोलन उन्हीं के अध्यक्ष-पद के अन्तर्गत हुआ।

मुहम्मद इकबाल के काव्य में गंभीर दर्शन के तत्व प्रकट हो उठे। इसमें खुद को ( खुदी को ) खुदा से जोड़ा गया था, आत्मा को परमात्मा से सम्बद्ध किया गया था। व्यक्तित्व को निर्भय, शक्तिमान और प्रखर बनाने का प्रयत्न किया गया था। उनके 'इसरारे खुदी' नामक काव्य में भारतीय तथा इस्लामी तत्वों का समन्वय है। वे काश्मीरी ब्राह्मणों के वंशधर थे। उनके काव्य के अनुशीलन कर्त्ताओं को मालूम है कि वस्तुतः वे कितने अधिक भारतीय हैं। सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से !! यही कारण है कि वे भारत में भी लोक-प्रिय हैं।

मुहम्मद इकबाल की कविता में सूफियाना रंग है। उन्होंने राष्ट्रीय देश-भक्त पूर्ण कविताओं से कवि जीवन आरम्भ किया और युद्धा काल में वे अधिका

धिक सामाजवादी होते गये । वे इससे प्रभावित हुए । उन्होंने किसानों मजदूरों पर कविताएँ लिखीं ।

पंडित नेहरू के लिए उनके हृदय में बहुत सम्मान था । मृत्यु के पूर्व, जब वे बहुत बीमार थे, उन्होंने जवाहरलाल जी से भेंट की थी । उनकी कविता—सारे जहां से अच्छा, हिन्दोसताँ हमारा, आज भी हममें जान डाल देती है ।

**तिलक**—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भारतीय जनता की 'उदासीन जड़ता हटाकर, उसको वीर और साहसी बना दिया । तिलक एक महापण्डित थे । पाण्डित्य के तेज में कार्य की शक्ति थी । कार्य की शक्ति में जनता में प्राण फूँक देने की ताकत थी । अंग्रेज उनकी लेखनी से थरते थे । उनका साप्ताहिक पत्र 'केसरी' ( वह पुराना जमाना था, जब लोग अंग्रेजों से डरते थे) अपनी अदम्य स्फूर्तिमय वाणी से प्राण-संचार करता था । तिलक निर्भीक थे, निडर थे । उनपर राज्य-द्रोह का मुकदमा चलाया गया । वह मुकदमा देश भर में गूँज उठा ! उनका प्रचण्ड व्यक्तित्व अदालत में भारत का समर्थन कर रहा था । बंग-भंग आन्दोलन में उन्होंने विशेष रूप से काम किया । वे महाराष्ट्रीय पण्डित थे, किन्तु उनका प्रभाव पंजाब में और बंगाल में ऐसा महसूस किया गया मानों वे उनके सामने बोल रहे हों । वे अखिल भारतीय नेता थे । उन्होंने भारतीय जनता को युद्ध ( शस्त्रों से न सही ) का आह्वान किया था । उनकी मृत्यु सन् बीस में हुई । बम्बई के मजदूरों ने आम हड़ताल कर दी । सुदूर रूस में बैठे हुए लेनिन ने उसे देखा और कहा कि "यह भविष्य का संकेत है ।"

बाल गंगाधर तिलक समाज-सुधारक थे । गणेश-उत्सव के सांस्कृतिक समारोह उनके चलाये हैं । वे महान् पण्डित थे । उन्होंने गीता पर एक साहित्य-पूर्ण पुस्तक लिखी । कर्म-योग के महत्व को प्रतिपादित करके उन्होंने हमें सकर्मक बनाया । उन्होंने प्राचीन इतिहास तथा संस्कृति के क्षेत्र में नई-नई खोजें की । उनमें ज्ञान और कर्म का विलक्षण समन्वय था ।

**प्रश्न**

१. विवेकानन्द के विचारों का स्पष्टीकरण कीजिए ।
२. बाल गंगाधर तिलक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।
३. रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल के संबंध में आप क्या जानते हैं ?
४. स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों की जानकारी दीजिए ।
५. टिप्पणी कीजिये—
  - (अ) रामकृष्ण परमहंस
  - (ब) अबुलकलाम आजाद

## भारत की स्वाधीनता का सूर्य । १८

[ प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में, भारतीय जनतंत्र की प्रतिष्ठा हुई। भारत उत्तरोत्तर प्रगति करता गया। आज हमारा देश विश्व में सम्मानित होता है और उसकी आवाज को ध्यान से सुना जाता है। इसका मूल कारण पंडित नेहरू का महान् व्यक्तित्व और नेतृत्व है।

पंडित नेहरू की नीति विश्व में अधिकाधिक सद्भावना तथा मैत्री के प्रसार के लिए है। यह आवश्यक है भय से विश्व मुक्त हो। शान्ति के वातावरण में रहकर ही, विश्व और भारत उन्नति कर सकता है।

पंडित नेहरू के पास देश का एक स्वप्न है। भारत शक्तिशाली बने— अधिक दृष्टि से आत्म-निर्भर हो, सम्पन्न हो जनता शिक्षित सुसंस्कृत बने। ]

भारत की स्वाधीनता, विश्व के इतिहास में एक महान् घटना है। प्रचण्ड शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य भारत की चोट से तिलमिला कर छिन्न-भिन्न होने लगा। शीघ्र ही, विश्व के अन्य राष्ट्र, ब्रिटिश, फ्रेंच, डच साम्राज्यों से मुक्ति पाने लगे भारत के स्वाधीनता-युद्धों से इन्हें भी प्रेरणा मिली। भारत के साथ ही, सीलोन और ब्रह्म देश भी स्वाधीन हो गया।

इधर, द्वितीय विश्व-युद्ध के विजेता देश रूस और अमरीका के बीच प्रतिद्वंद्विता उठ खड़ी हुई। यूरोप और एशिया में कई देश साम्यवादी हो



पंडित नेहरू

गये। एक गुट रूस का हुआ। दूसरा—पश्चिमी शक्तियों का, जिसका नेतृत्व अमरीका करता था। दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति का विकास करते हुए, अणुबम, हायड्रोजन बम, राकेट आदि का निर्माण किया।

अपने देशों के हितों को ध्यान में रखकर, दोनों प्रतिद्वंद्वी देशों के बीच भारत ने तटस्थता की नीति बरती। साथ ही, विश्वशान्ति और निःशस्त्रीकरण की दिशा में भारत ने प्रयत्न किया। भारत ने संयुक्त-राष्ट्र-संघ के हाथ मजबूत किये। इस प्रकार, हमने विश्व में युद्ध के

वातावरण को घटाने के लिए, नैतिक वातावरण का सृजन करने का प्रयत्न किया। भारत ने 'पंचशील' नामक सिद्धान्तों को विश्व के सम्मुख रखा, जिसके अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि एक देश दूसरे की स्वाधीनता का सम्मान करे और उसको आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप न करे।

किन्तु, भारत तब तक अपनी शक्ति नहीं बढ़ा सकता था, जब तक देश आर्थिक दृष्टि से भी आत्म-निर्भर नहीं हो जाये। कृषि तथा उद्योग के विकास के लिए, भारत-सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित कीं, जिसके फल-स्वरूप देश में भिलाई, रूरकेला, दुर्गापुर, आदि स्थानों पर लोहे के कारखाने स्थापित किये गये। होराकुंड और भाखरा नांगल जैसे बांध बनाये गये; जिसके उपयोग से सिंचाई तथा विद्युत्-निर्माण किया जाने लगा। बिजली की भारी मशीनें बनाने, रेलवे इंजन बनाने, पैनिसिलिन नामक अत्यन्त महत्वपूर्ण औषधि बनाने इत्यादि के कारखाने खुले। भारत का औद्योगिक विकास और विस्तार होने लगा।

उधर, नये-नये विश्वविद्यालय और कालेज खुले। भारत के लोग वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए, रूस और अमरीका जाने लगे।



भारत की सही-सही विदेश-नीति और सही-सही राष्ट्र-निर्माण नीति के फलस्वरूप भारत की प्रतिष्ठा विश्व में बढ़ती गई। रूस के सर्वोच्च नेता ख्रुश्चेव बलगैनिन तथा अमरीका के राष्ट्राध्यक्ष आइजेनहाँवर ने भारत की भेंट की, दौरा किया। वे भारत की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए।

सन् १९६१ के दिसम्बर में भारत ने गोवा लिया और इस प्रकार साढ़े चार सौ साल से चले आ रहे पुर्तगीज साम्राज्य का भारत से लोप हो गया। काश्मीर का एक भाग, जो पाकिस्तान ने हथिया लिया और काश्मीर का उत्तरी सीमांत का कुछ हिस्सा जो चीन ने ले लिया ये समस्याएँ अभी बची हुई हैं। धैर्य और शान्ति, सद्भावना और शक्ति, मैत्री और बल दोनों के प्रयोग से ये समस्याएँ भी धीरे-धीरे सुलभ जायेंगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत भारत की सेनाओं ने उत्तरी तथा दक्षिणी कोरिया के बीच शान्ति स्थापित की। भारत ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के उलभे हुए मामलों में भी हस्तक्षेप करके, शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसी प्रकार, मध्य अफ्रीका के कांगों प्रदेश के एकीकरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत भारतीय सेनाएँ प्रयत्नशील हैं। सद्भावना और शक्ति दोनों का प्रयोग आवश्यक होता है।

आज भारत विश्व के अन्यतम देशों में है। उसकी आवाज सब देशों को सुननी पड़ती है। उसकी सलाह में एक वजन होता है।

इस सबका श्रेय विश्व के अन्यतम राजनीतिज्ञ पण्डित जवाहर लाल नेहरू को है। अगर कोई पूछे कि भारत के श्रेष्ठतम राजनैतिक पुरुष कौन हुए जिनका नाम और काम दुनिया को जानना चाहिये तो उसका उत्तर होगा अशोक, अकबर, महात्मा गांधी और पण्डित जवाहर लाल नेहरू।

अतएव, अब हम राष्ट्रीय सांस्कृति क्षेत्र में काम किए हुए महान् पुरुषों का स्मरण करना चाहेंगे।

**अंग्रेजों की देन**—अंग्रेजों ने जबर्दस्ती ही क्यों न सही, भारत को नवयुग में प्रवेश कराया। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए (पढ़िये डिसकवरी आफ

इण्डिया ) अंग्रेजों ने भारत को खून से तरबतर कर दिया फिर भी यह श्रेय उन्हें देना ही होगा कि भारत में आधुनिक सभ्यता का उदय अंग्रेजों के कारण हुआ । साथ ही, प्राचीन सामन्ती समाज-व्यवस्था भारत में हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट हो गई ।

वैज्ञानिक संचार-साधनों तथा आवागमन के साधनों का जल देश भर में फैल जाने से जो घनिष्ट परस्पर सम्पर्क स्थापित हुआ, उसके फलस्वरूप यह बोध उत्पन्न हुआ कि भारत एक राष्ट्र है हम सब उसके अंग हैं । राष्ट्रवाद के अभ्युत्थान की आधार भूमि अंग्रेजों ने, जाने अनजाने ढंग से, तैयार की ।

हमने उनसे राजनैतिक सामाजिक संस्थाएँ भी लीं जैसे पार्लामेंट, कांग्रेस, निर्वाचन, कानून, यूनीवर्सिटी, सरकारी महकमे और उनकी कार्य विधियाँ इत्यादि—इनको प्राप्त करने के लिए हमें सर नहीं मारना पड़ा ।

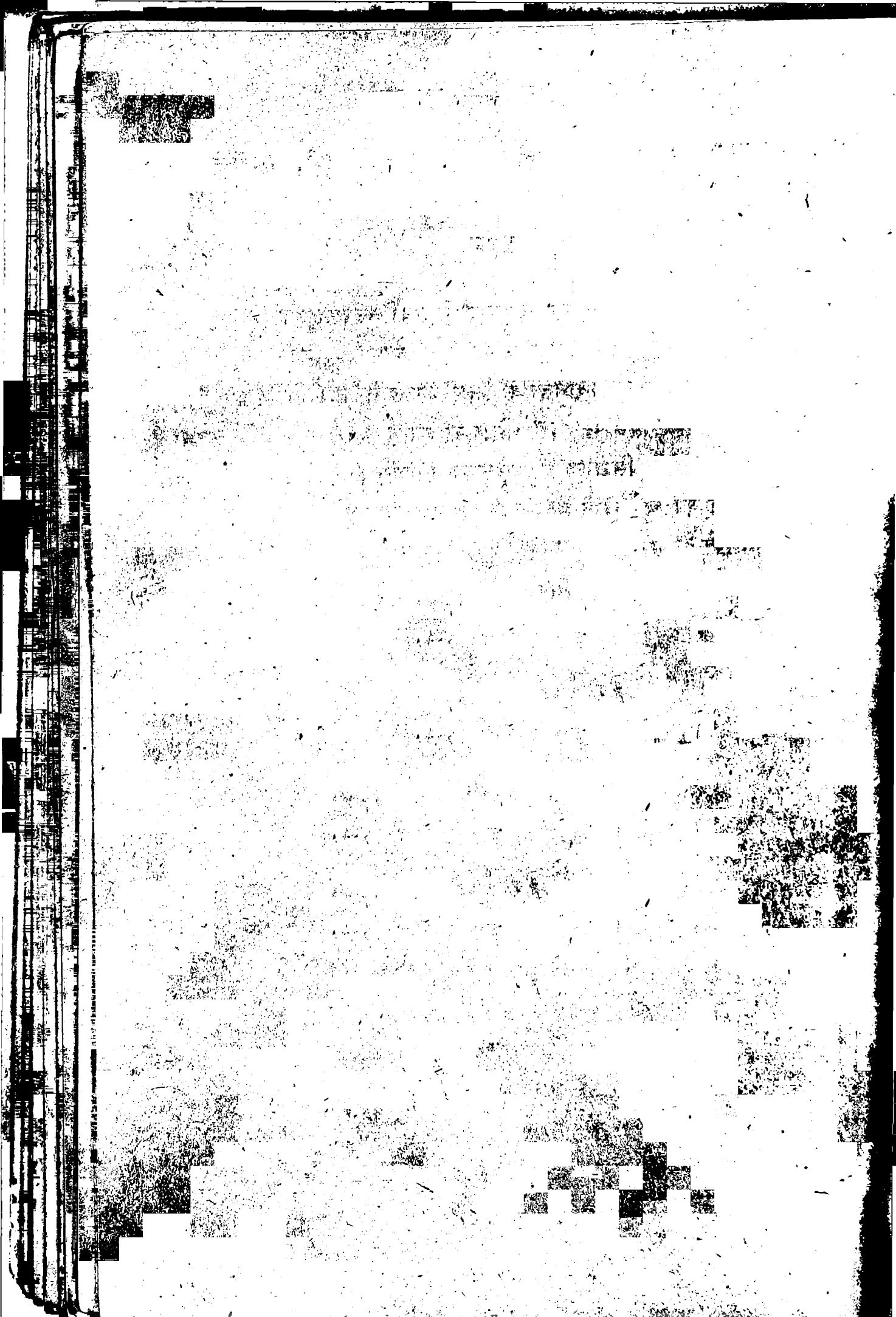
हमने पश्चिम से ब्रिटेन के जरिये औद्योगिक संगठन, वैज्ञानिक साधन जैसे बिजली, तार, मोटर, रेल-इंजन, जहाज इत्यादि का शास्त्र प्राप्त किया । अंग्रेजी भाषा भी हमें उनसे मिली, जिसके माध्यम से हम विश्व के ज्ञान को भारत में ला सके । साथ ही, आधुनिक राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विचार धाराएँ हमें अंग्रेजी से मिली ।

ब्रिटेन ने हमारा नुकसान भी बहुत किया । हमारे देश के धन और सम्पत्ति के द्वारा, ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति हुई, औद्योगिक विकास और प्रसार हुआ । हमने कितना खोया यह इस बात से सिद्ध होगा कि जिन दिनों हमने स्वतंत्रता खोई उन्हीं दिनों के आस-पास संयुक्त राज्य अमरीका ने ( जो हमसे, उन दिनों के लिहाज से, बहुत पिछड़ा हुआ, निर्धन, तथा बहु-जातीय था ) स्वाधीनता प्राप्त की । किन्तु, डेढ़ सौ साल की विकास प्रक्रिया के दौरान में वह विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली दो राष्ट्रों में से एक बन बैठा । और, हम अपने हजारों सालों से चले आते हुए पिछड़ेपन को दूर करने के प्रारम्भिक प्रयत्न ही कर रहे हैं । किन्तु, प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में भारत

की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है, यह हमीं नहीं, सारी दुनिया कह रही है ।

### प्रश्न

१. पण्डित नेहरू के नेतृत्व में भारत ने क्या तरक्की की ?
२. देश की औद्योगिक प्रगति के संबंध में आप क्या जानते हैं ?
३. अन्य राष्ट्रों की स्वाधीनता के लिए भारत ने क्या किया ?
४. संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत निःशस्त्रीकरण का समर्थन क्यों करता है ?
५. 'पंचशील' के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
६. भारत को अंग्रेजों ने क्या-क्या दिया, क्या-क्या नहीं दिया ?
७. भविष्य के भारत का क्या कोई स्वप्न आपके पास है ? यदि है तो वह क्या है ? और यदि नहीं है तो क्यों नहीं ? कारण सहित उत्तर दीजिए ।







B-1598

मूल्य एक रुपया पचास नये पैसे